चौदहवाँ अध्याय

प्रकृति परमात्मा की शक्ति है। वह उसी में बीज डालता है। उसी से सारे प्राणी उत्पन्न होते हैं। शरीर मात्र उसी का कार्य है। प्रकृति संसार की माता है और परमात्मा संसार का पिता है। विज्ञान में जिसे प्रोटॉन, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान कहते हैं वही वैदिक भाषा में सत्व, रज और तम गुण कहलाते हैं। ये तीन गुण प्रकृति के गुण हैं। इनसे ही तीन प्रकार के अहंकार बनते हैं। वैदिक भाषा में इनको आपः नाम से पुकारा जाता है। विज्ञान की भाषा में इनको परिमंडल के कण कहा जाता है। सतोगुण से ज्ञान, शुद्धता और साधुता, रजोगुण से लोभ, काम, तीव्र वासना आदि और तमोगुण से आलस्य, अज्ञान, मोह आदि उत्पन्न होते हैं। 'रामायण' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि रावण में रजोगुण, कुम्भकर्ण में तमोगुण और विभीषण में सत्व गुण का प्राधान्य था। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी गुण का प्राधान्य होता है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति में तीनों गुण अवश्य होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मानव के हृदय में रामायण घट रही है। आधुनिक मानव में अधिकतर रजोगुण और तमोगुण का प्राधान्य और सत्वगुण की न्यूनता है।

ये तीनों गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं। इस प्रकार जीवात्मा जब प्रकृतिजन्य गुणों से संयोग कर लेता है तो अपने अनन्त परमानंद स्वरूप को भूल जाता है और शरीर-मन-बुद्धि-अहंकार के माध्यम से संसार में लिप्त हो जाता है। अतः ये गुण तो बंधन ही है। इस कारण मनुष्य को इन तीनों गुणों से ऊपर उठकर मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये।

1. परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।।

फिर अर्जुन से भगवान् बोले कि सुन,
जो ज्ञानों का है ज्ञान सुन उसके गुण।
मुनि जिसको यह ज्ञान हासिल हुआ,
कमाल-ए फ़ज़ीलत से वासिल हुआ।।

शब्दार्थ –परम्–परम; भूयः–फिर; प्रवक्ष्यामि–बतलाऊँगा; ज्ञानानाम्–ज्ञानों में; ज्ञानम्–ज्ञान को; उत्तमम्–श्रेष्ठ को; यत्–जिसको;

ज्ञात्वा–जानकर; मुनयः–मुनिजन; सर्वे–सब; पराम्–परम; सिद्धिम्–सिद्धि को; इतः–इस संसार से; गताः–प्राप्त कर गये । कमाल-ए फज़ीलत–परम सिद्धि, वासिल–प्राप्त ।

भावार्थ– मैं फिर तुझे ज्ञानों में परम, सर्वोत्तम ज्ञान बतलाऊँगा जिसे जानकर सब मुनि इस संसार से ऊपर उठकर परम सिद्धि को पहुँचे हैं ।

2. इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।

जो लेते हैं इस ज्ञान का आसरा,
वो यक-रंग हो जायें मुझ में सदा ।
जो पैदा हो दुनियाँ तो आयें न वो,
फ़ना हो तो तकलीफ़ पायें न वो ।।

शब्दार्थ –इदम्–इस; ज्ञानम्–ज्ञान को; उपाश्रित्य–समीप से आश्रय लेकर; मम–मेरे; साधर्म्यम्–समानधर्मता को; आगताः–प्राप्त हुए; सर्गे–सृष्टि के जन्म होने पर; अपिः–भी; उपजायन्ते– जन्म धारण करते हैं; प्रलये–प्रलय काल में; व्यथन्ति–दुःखी होते हैं; च–और । यक-रंग–एकमेक; फ़ना–प्रलय ।

भावार्थ– इस ज्ञान का आश्रय लेकर जो मेरे 'साधर्म्य' (समान प्रकृति) में आ पहुँचे हैं वे सृष्टि की उत्पत्ति का समय आने पर भी जन्म नहीं लेते, सृष्टि का प्रलय आने पर भी दुःखी नहीं होते ।

3. मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।

शिकम है मेरी कुदरत-ए कामला,
जो मैं तुख़्म डालूँ तो हो हामला ।
यही है महाब्रह्म असल-ए हयात,
कि भारत इसी से हो कुल कायनात ।।

शब्दार्थ –मम–मेरी; योनिः–योनि; महद्ब्रह्म–प्रकृति; तस्मिन्–उसमें; गर्भम्–बीज को; दधामि–धारण करता हूँ अर्थात् डालता हूँ; अहम्–मैं; संभवः–उत्पत्ति; सर्वभूतानाम्–चराचरभूतों की; ततः–उस बीज से; भवति–होता है; भारत– हे अर्जुन ।

शिकम–योनि; कुदरत–प्रकृति; कामला–सम्पूर्ण; तुख्म–बीज; हामला–गर्भवती; असल-ए हयात–योनि; कायनात–कारण ।

भावार्थ – प्रकृति मेरी योनि है, उसमें मैं बीज डालता हूँ । हे अर्जुन ! मेरे उस बीज से समस्त जड़ चेतन उत्पन्न होते हैं ।

4. सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।।

किसी पेट से कोई पाये जनम,
हो अर्जुन कोई शक्ल, कोई शिकम ।
शिकम है महा-ब्रह्म मैं बाप हूँ,
कि बीज इसमें मैं डालता आप हूँ ।।

शब्दार्थ – सर्वयोनिषु–सब योनियों में; कौन्तेय–हे अर्जुन; मूर्त्तयः–रूप; सम्भवन्ति–उत्पन्न होते हैं; याः–जो; तासाम्–उनका; ब्रह्म महद्–प्रकृति; योनिः–योनि; अहम्–मैं; बीजप्रदः–बीज डालने वाला; पिता–पिता हूँ ।

शिकम–योनि ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! नाना प्रकार की सब योनियों में जो रूप उत्पन्न होते हैं उन सब की योनि प्रकृति है, और उन्हें बीज देने वाला पिता मैं हूँ ।

5. सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।।

नमूदार माया से हों तीन गुण,
सतोगुण रजोगुण तमोगुण यह सुन ।
जो है ला-फ़ना रूह तन में मकीं,
यह गुण कैद करते हैं उसको वही ।।

शब्दार्थ – सत्त्वम्–सत्त्व; रजः–रज; तमः–तम; इति–ये; गुणाः–गुण; प्रकृतिसंभवाः–प्रकृति से उत्पन्न होने वाले; निबध्नन्ति–बाँध लेते हैं; महाबाहो–हे महाबाहु; देहे–शरीर में; देहिनम्–देही को, आत्मा को; अव्ययम्–अविनाशी को ।

नमूदार–प्रगट; ला-फ़ना–अविनाशी; रूह–आत्मा; मकीं–निवासित;

भावार्थ – हे अर्जुन! प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सत्त्व, रज, तम–ये तीनों गुण अविनाशी आत्मा को शरीर में बाँध लेते हैं।

6. तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।।

सतोगुण की फ़ितरत है पाक़ीजा नूर,
न ऐब इसमें अर्जुन न कोई कसूर।
करे रूह को शौक-ए राहत से क़ैद,
करे रूह को ज़ौक-ए दानिश का सैद।।

शब्दार्थ – तत्र–उन गुणों में; सत्त्वम्–सत्त्वगुणः निर्मलत्वात्–निर्मल होने के कारण; प्रकाशकम्–प्रकाशक; अनामयम्–आरोग्यकर है; सुखसंगेन–सुख के प्रति आसक्ति के कारण; बध्नाति–बाँधता है; ज्ञानसंगेन–ज्ञान के प्रति आसक्ति के कारण; च–भी; अनघ–हे निष्पाप अर्जुन।

फ़ितरत–स्वभाव; पाक़ीजा-नूर–निर्मल प्रकाश; ऐब–रोग; कसूर–दोष; शौक-ए-राहत–सुख; जौक-ए दानिश–ज्ञान प्राप्ति की उत्सुकता।

भावार्थ– हे निष्पाप अर्जुन! इन गुणों में से सत्त्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाशक और आरोग्यकर है। यह सत्त्वगुण आनन्द और ज्ञान के प्रति आसक्ति के कारण मनुष्य को बाँधता है।

7. रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्।।

रजोगुण की फ़ितरत है जज़्बात की,
है संगत का शौक उसकी और तिशनगी।
यह जौक-ए अमल का बनाती है जाल,
करे रूह को क़ैद कुन्ती के लाल।।

शब्दार्थ – रजः–रजोगुण; रागात्मकम्–रागात्मक है; विद्धि–जान; तृष्णासंगसमुद्भव–तृष्णा के प्रति आसक्ति के कारण उत्पन्न; तत्–वह; निबध्नाति–बाँधता है; कौन्तेय–हे अर्जुन! कर्मसंगेन–कर्म के प्रति आसक्ति के कारण; देहिनम्–देहधारी आत्मा को।

जज़्बात–रागात्मक; तिशनगी–तृष्णा ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! रजोगुण की उत्पत्ति तृष्णाओं से होती है और इसलिये यह देहदारी जीव सकाम कर्मों में बंध जाता है ।

8. तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।

तमोगुण जहालत की औलाद है,
कब इसमें मकीं तन का आज़ाद है ।
करे कैद धोखे से भारत इसे,
करे खाब-ओ सफ़लत से ग़ारत इसे ।।

शब्दार्थ –तमः–तमोगुण को; तु–और; अज्ञानजम्–अज्ञान से उत्पन्न, अज्ञानमूलक; विद्धि–जान ले; मोहनम्–भ्रम में डालने वाला; सर्वदेहिनाम्–सर्व देहधारियों का; प्रमादालस्यनिद्राभिः–लापरवाही, आलस्य निरुद्यमता) और निद्रा के द्वारा; तत्–वह; निबध्नाति–बाँधता है; भारत–हे अर्जुन ।

जहालत–अज्ञानता; मकीं–स्थित; खाब–निद्रा; ग़फलत–प्रमाद; ग़ारत–मारना ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! तू यह समझ ले कि तमोगुण अज्ञानमूलक है, यह देहधारीमात्र को भ्रम में डाल देता है । यह मनुष्य को लापरवाही, आलस्य और निद्रा के पाश में बाँध देता है ।

9. सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ।।

सतोगुण का रहता है सुख से लगाओ,
रजोगुण का शौक-ए अमल है सुभाओ ।
तमोगुण का परदा पड़े ज्ञान पर,
तो ग़फ़लत मुसल्लत हो इन्सान पर ।।

शब्दार्थ –सत्त्वम्–सत्त्वगुण; सुखे–सुख में; संजयति–बढ़ता है, लगा देता है; रजः–रजोगुण; कर्मणि–कर्म में; भारत–हे अर्जुन ! ज्ञानम्–ज्ञान को; आवृत्य–ढककर; तु–और; तमः–तमोगुण; प्रमादे–लापरवाही में; संजयति–लगा देता है; ऐसा कहा जाता है ।

शौक-ए अमल–कर्म की रुचि; ग़फलत–प्रमाद; मुसल्लत–अधीन ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! सत्त्वगुण मनुष्य को 'सुख' में, रजोगुण 'कर्म' में और तमोगुण ज्ञान को ढक कर 'प्रमाद' में लगा देता है ।

10. रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।

सतोगुण का जिस वक्त बाला हो दस्त,
रजोगुण तमोगुण रहें इससे पस्त ।
रजस से सतोगुण तमोगुण दबे,
तमस से रजोगुण सतोगुण घटे ।।

शब्दार्थ – रजः–रजोगुण को; तमः–तमोगुण को; च–भी; अभिभूय–दबाकर; सत्त्वम्–सत्त्वगुण; भवति–(प्रबल) होता है; भारत–हे अर्जुन ! रजः–रजोगुण; सत्त्वम्–सत्वगुण को; तमः–तमोगुण को; एव–ही; तमः–तमोगुण; सत्त्वम्–सत्त्वगुण को; रजः–रजोगुण को ।

बाला–ज़ोर; दस्त–हाथ; पस्त–दबे ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण उभर आता है; तो कभी सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्वगुण और रजोगुण को दबा कर तमोगुण बढ़ता है ।

11. सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।।

बदन है मकाँ और हवास उसके दर,
अगर दर है रोशन तो रोशन है घर ।
अगर ज्ञान का नूर हो ज़ू-फ़िशाँ,
सतोगुण के ग़लबे का है यह निशाँ ।।

शब्दार्थ – सर्वद्वारेषु–सब द्वारों में; देहे–शरीर में; अस्मिन्–इस; प्रकाशः–प्रकाश; उपजायते–उत्पन्न होता है; ज्ञानम्–ज्ञान; यदा–जब; तदा–तब; विद्यात्–जान लें; विवृद्धम्–बढ़ा हुआ; सत्त्वम्–सत्त्व को; इति–ऐसा ; उत–कहा गया है ।

दर—द्वार; जूं-फिशाँ—प्रकाशित; ग़लबे—अधिकता; निशाँ—चिह्न ।

भावार्थ— जब इस शरीर में इन्द्रियों के सब द्वारों में प्रकाश तथा ज्ञान का उदय हो जाता है तब यह समझ लेना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ रहा है ।

12. लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।

रजोगुण का ग़लबा हो अर्जुन अगर,
तो हो जायें हिस-ओ हवा ज़ोर पर ।
तमन्ना हो कोशिश हो और पेच-ओ ताब,
रहे शौक-ए किरदार में इज़तराब ।।

शब्दार्थ —लोभः—लोभ; प्रवृत्तिः—प्रवृत्ति (रुचि); आरम्भः—आरम्भ; कर्मणाम्—कर्मों का; अशमः—अशान्ति; स्पृहा—इच्छा; रजसि—रजोगुण में; एतानि—ये सब; जायन्ते—उत्पन्न होते हैं; विवृद्धे—अधिकता होने पर; भरतर्षभ—हे अर्जुन !

ग़लबा—लोभ; हिस—अहंकार; तमन्ना—इच्छा; कोशिश—उद्वेग; पेच-ओ ताब—संघर्ष; इजतराब—विक्षेपता ।

भावार्थ —हे अर्जुन ! जब रजोगुण की वृद्धि होती है तब लोभ, प्रवृत्ति, कार्यों का आरम्भ, अशान्ति और वस्तुओं की लालसा—ये सब उत्पन्न हो जाते हैं ।

13. अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ।।

तमोगुण जब इन्साँ में हो ज़ोर पर,
तो हो मोह ग़ालब कुरु के पिसर ।
अन्धेरा तबीयत पे छा जायेगा,
जमूद उसको ग़ाफ़िल बना जायेगा ।।

शब्दार्थ —अप्रकाशः—अंधेरा; अप्रवृत्तिः—निष्क्रियता; च—और; प्रमादः—लापरवाही; मोहः—मूढ़ता; एव—ही; तमसि—तमोगुण में; एतानि—ये; जायन्ते—उत्पन्न होते हैं; विवृद्धे—बढ़ जाने पर; कुरुनन्दन—हे अर्जुन ।

ग़ालब–अधीन कर लेता है; पिसर–बेटा; अन्धेरा–अज्ञान; तबीयत–बुद्धि; जमूद–तमोगुण; ग़ाफिल–प्रमादी ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! जब तमोगुण की वृद्धि होती है तब प्रकाश का अभाव, काम करने की इच्छा का अभाव, लापरवाही तथा मूढ़ता–ये उत्पन्न हो जाते हैं ।

14. यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ।।

सतोगुण जो ग़ालिब हो इन्सान पर,
इसी हाल में मौत आये अगर ।
मर्की तन का पाये पवित्र मकाम,
वो सिद्धों की दुनियाँ में जाथे मदाम ।।

शब्दार्थ – यदा–जब; सत्त्वे–सत्त्व के; प्रवृद्धे–बढ़े हुए होने पर; तु–तो; प्रलयम्–मरने के काल को; याति–पहुँचता है; देहभृत्–देहधारी; तदा–तब; उत्तमविदाम्–ऋषियों के; लोकान्–लोकों को; अमलान्–शुद्ध; प्रतिपद्यते–प्राप्त करता है ।

ग़ालिब–वृद्धि; मर्की–जीवात्मा; पवित्तर मकाम–निर्मल लोक; मदाम–सदा ।

भावार्थ – जब कोई व्यक्ति सतोगुण में मरता है तो उसे महर्षियों के विशुद्ध उच्चतर लोकों की प्राप्ति होती है ।

15. रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ।।

रजोगुण में इन्साँ अगर जान दे,
जनम ऐहल-ए किरदार में आ के ले ।
तमोगुण में मर कर जो ज़िन्दा में आयें,
दरिन्दों, परिन्दों, चरिन्दों में आयें ।।

शब्दार्थ – रजसि–रजोगुण की दशा में; प्रलयम्–मरण को; गत्वा–प्राप्त करके; कर्मसंगिषु–कर्म में आसक्त लोगों में; जायते–जन्म लेता है; प्रलीनः–मरा हुआ; तमसि–तमोगुण की अवस्था में; मूढयोनिषु–पशु योनियों में; जायते–जन्म लेता है ।

ऐहल-ए किरदार—कर्म-संगियों; जिन्दों—प्राणियों; दरिन्दों—खून पीने वाले जानवरों; परिन्दों—उड़ने वाले जन्तुओं; चरिन्दों—चरने वाले पशुओं ।

भावार्थ —जब कोई रजोगुण की अवस्था में मरे, तब कर्मों में आसक्त लोगों में जन्म लेता है, और तमोगुणी अवस्था में मर कर पशु योनियों में जन्म लेता है ।

16. कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।।

जो करता है इन्साँ सतोगुण अमल,
तो पाता है पाकीज़ा और नेक फल ।
रजोगुण अमल से मिले पेच-ओ-ताब,
तमोगुण अमल है जहालत का बाब ।।

शब्दार्थ —कर्मणः—कर्म का; सुकृतस्य—पुण्य का; आहुः—कहते हैं; सात्त्विकम्—सात्त्विक; निर्मलतम्—निर्मल; फलम्—फल है; दुःखम्—दुःख; अज्ञानम्—अज्ञान; तमसः—तमोगुण का; फलम्—फल ।

पाकीज़ा—पवित्र; नेक-फल—निर्मल फल; पेच-ओ ताब—विशेषता; जहालत—अज्ञानता; बाब—कारण ।

भावार्थ— श्रेष्ठ कर्म का फल सात्त्विक और निर्मल होता है; राजस कर्म का फल दुःख होता है; तामस कर्म का फल अज्ञान होता है ।

17. सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।

सतोगुण से उरफ़ाँ का पैदा हो नूर,
रजोगुण से हिर्स-ओ हवा का ज़हूर ।
तमोगुण से धोखा भी ग़फ़लत भी हो,
तबीयत पे ग़ालिब जहालत भी हो ।।

शब्दार्थ —सत्त्वात्—सत्त्वगुण से; संजायते—उत्पन्न होता है; ज्ञानम्—ज्ञान; रजसः—रजोगुण से; लोभः—लोभ; एव—ही; च—भी; प्रमादमोहौ—लापरवाही और मूढ़ता; तमसः—तमोगुण से; भवतः—होते हैं; अज्ञानम्—अज्ञान; एव—ही ।

उरफाँ—ज्ञान; नूर—ज्योति; हिर्स—लोभ; हवा—अहंकार; ज़हूर—प्रगट; तबीयत—बुद्धि; ग़ालिब—वृद्धि; जहालत—अज्ञानता ।

भावार्थ— सतोगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है, तमोगुण से प्रसाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होता है ।

18. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।

सतोगुण से जाये सूए आसमाँ,
रजोगुण से लटके रहें दरमियाँ ।
तमोगुण का गुण है जो सब से रज़ील,
यह पस्तो में डाले, यह कर दे ज़लील ।।

शब्दार्थ —ऊर्ध्वम्—ऊपर की ओर; गच्छन्ति—जाते हैं, सत्त्वस्थाः—सत्त्वगुण में स्थित जन; मध्ये—मध्य में; तिष्ठन्ति— ठहरते हैं; राजसाः—रजोगुण वाले; जघन्यगुणवृत्तिस्थाः—जघन्य (हीन) गुणों और जघन्य वृत्ति में पड़े हुए; अधः—नीचे की ओर; गच्छन्ति—जाते हैं; तामसाः—तमोगुण वाले लोग ।

सुए—अभिप्राय ऊँचे लोकों की ओर है; दरमियाँ—अभिप्राय मृत्यु लोक से है; रज़ील—निष्कृष्ट; पस्ती—पतन; ज़लील—अपमानित ।

भावार्थ —सतोगुणी ऊपर की ओर जाते हैं, रजोगुण लोग मध्य में रहते हैं और तमोगुणी लोग नीच योनियों एवं नरकों में जाते हैं ।

19. नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ।।

जो ऐहल-ए बसीरत हैं ऐहल-ए नज़र,
गुणों को समझते हैं जो कारगर ।
मुझे मानते हैं गुणों से बलन्द,
तो वासिल मुझीं से हों ओ अर्ज़मन्द ।।

शब्दार्थ —अन्यम्—दूसरे को; गुणेभ्यः—गुणों के अतिरिक्त; कर्तारम्—कर्ता को; यदा—जब; द्रष्टा—देखने वाला आत्मा; अनुपश्यति—देख लेता है; गुणेभ्यः—गुणों से; च—भी; परम्— परम; वेति—जानता है;

मद्भावम्—मद्भाव अर्थात् मेरे स्वरूप को; सः—वह; अधिगच्छति—पा लेता है ।

ऐहल-ए बसीरत—ज्ञान-चक्षु सम्पन्न; ऐहल-ए नजर—ज्ञानवान्; कारगर—कर्ता; बलन्द—अतीत; वासिल—प्राप्त; अर्ज़मन्द—भक्तगण ।

भावार्थ— जब द्रष्टा यह देख लेता है कि प्रकृति के इन तीन गुणों के अतिरिक्त दूसरा कोई कर्ता नहीं है, और इन गुणों से परे रहने वाले परमेश्वर को जान लेता है, तब वह द्रष्टा मद्भाव को, मेरे को जान लेता है जो इन तीनों गुणों से परे हैं, तो वह मेरे दिव्य स्वभाव को प्राप्त होता है ।

20. गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।।

बदन का है तीनों गुणों पर मदार,
मकीन-ए बदन गर करे उनको पार ।
वो चखता है अमृत वो पाता है सुख,
न जीना न मरना न पीरी न दुःख ।।

शब्दार्थ —गुणान्—गुणों को; एतान्—इन; अतीत्य—लाँघ कर; त्रीन्—तीनों को; देही—आत्मा; देहसमुद्भवान्—देह से उत्पन्न; जन्ममृत्युजरादुःखैः—जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा रूप दुःखों से; विमुक्तः—मुक्त हुआ; अमृतम्—अमरता को; अश्नुते—प्राप्त करता है ।

मदार—आश्रय; मकीन-ए बदन—जीवात्मा; पीरी—बुढ़ापा ।

भावार्थ— जब देहधारी आत्मा देह से उत्पन्न होने वाले इन तीन गुणों को लाँघ जाता है, तब वह जन्म-मरण, वृद्धावस्था के दुःखों से मुक्त हो जाता है और अमर जीवन को प्राप्त करता है ।

21. कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।।

फिर अर्जुन ने पूछा कि ऐ किर्दगार !
वो इन्साँ जो तीनों गुणों से हो पार ।
चलन क्या है उस का इलामात क्या,
वो तीनों गुणों से ही क्योंकर रिहा ?

शब्दार्थ –कैः–किन; लिङ्गैः–पहचानों से (युक्त); त्रीन्–तीनों को; गुणान्–गुणों को; एतान्–इन; अतीतः–लाँघने वाला, पार करने वाला; भवति–होता है; प्रभो–हे भगवन्; किमाचारः–किस प्रकार के (कैसे) आचरण वाला; कथम्–कैसे; च–और; एतान्–इन; त्रीन्–तीनों; गुणान्–गुणों को; अतिवर्तते–लाँघ जाता है ।
किर्दग़ार–हे प्रभो; इलामात–लक्षण; रिहा–स्वतंत्र ।

भावार्थ– हे प्रभु ! जो सत्त्व रज-तम–इन तीन गुणों को लाँघ जाता है उसकी क्या पहचान है ? उसका आचरण कैसा होता है और वह इन तीन गुणों को कैसे लाँघ जाता है ।

22. प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ।।

सुन अर्जुन सतोगुण से हासिल हो नूर,
रजोगुण से कूअत तमस से फ़तूर ।
है कामिल जिसे इनकी चाहत नहीं,
जो हों तो उसे इनसे नफ़रत नहीं ।।

शब्दार्थ –प्रकाशम्–प्रकाश (सत्त्वगुण); च–और; प्रवृत्तिम्– कर्म में प्रवृत्ति (रजोगुण); मोहम्–मूढता (तमोगुण); एव–ही; मोहम्–मूढता (तमोगुण); एव–ही; पाण्डव–हे अर्जुन ! न–नहीं; द्वेष्टि–द्वेष करता है; सम्प्रवृत्तानि–उत्पन्न हुए- हुओं को; न–नहीं; निवृत्तानि–दूर हुए-हुओं को; कांक्षति–इच्छा करता है ।
हासिल–प्राप्त; नूर–ज्ञान का प्रकाश; कूअत–शक्ति ,बल); फ़तूर–विपरीत बुद्धि, अर्थात् राक्षसी स्वभाव; कामिल–सिद्ध; चाहत–आकाँक्षा ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! जो व्यक्ति प्रकाश (सत्त्वगुण), प्रवृत्ति (रजोगुण) और मोह (तमोगुण) के उत्पन्न होने पर दुःख नहीं मनाता और जब ये न हों तब इनके लिये इच्छा नहीं करता ।

23. उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।।

जो इन्साँ गुणों से रहे बेग़रज़,
न बेकल हो उनसे न रक्खे ग़रज़ ।
जो समझे कि करते हैं गुण ही यह काम,
रहे पुरसकूँ ख़ुद में कायम मदाम ।।

शब्दार्थ –उदासीनवत्–उदासीन के समान; आसीनः–स्थिर बैठा हुआ; गुणैः–गुणों से; यः–जो; न–नहीं; विचाल्यते–विचलित कर दिया जाता है; गुणाः–ये गुण; वर्तन्ते–अपने-अपने कार्य कर रहे हैं; इति–इस प्रकार; एव–ही; यः–जो; अवतिष्ठति–स्थिर रहता है; इंगते–विचलित होता, चेष्टा करता है ।

बेग़रज–उदासीन; बेकल–व्याकुल; ग़रज़–स्वार्थ; पुरसकूँ–प्रशान्त; कायम–स्थित; मदाम–सदा ।

भावार्थ –जो उदासीन की भाँति स्थिर है, जो सत्त्व-रज-तम–इन गुणों द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता, जो यह समझता हुआ कि गुण ही अपना-अपना काम कर रहे हैं स्थिर रहता है और विचलित नहीं होता है ।

24. समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।

जो सुख दुःख में यकसाँ जो हैं मुस्तकिल,
बराबर जिसे ज़र हो मिट्टी कि सिल ।
मुसावी पसन्दीदा-ओ ना-पसन्द,
हो तहसीं कि नफ़री वो सबसे बलन्द ।।

शब्दार्थ –समदुःखसुखः–जो दुःख और सुख को समान समझता है; स्वस्थः–अपने में ही स्थित; समलोष्ठाश्मकांचनः–जो मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को समान समझता है; तुल्यप्रियाप्रियः–जो प्रिय और अप्रिय को समान समझता है; धीरः–धीर; तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः–जो अपनी निन्दा और बड़ाई को बराबर मानता है ।

यकसाँ–समान; मुस्तकल–दृढ़; ज़र–स्वर्ण; पसन्दीदा–प्रिय; ना-पसन्द–अप्रिय; तहसीं–स्तुति; नफ़री–निन्दा ।

भावार्थ– जो सुख-दुःख को समान समझता है, जो अपने में स्वस्थ अर्थात् अपने में स्थिर रहता है, मग्न रहता है, जो मिट्टी के ढेले, पत्थर

और सोने को समान समझता है, जो प्रिय या अप्रिय वस्तु प्राप्त होने पर एक समान रहता है, जो धीर है, जो निन्दा और स्तुति को एक-समान समझता है ।

25. मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।

न जिल्लत को परवाह न इ़ज़्ज़त की भूख,
करे दोस्त दुश्मन से यकसाँ सलूक ।
ग़रज़ त्याग दे मुझ पे सब कारोबार,
समझ लो गुणों से वो होता है पार ।।

शब्दार्थ – मानापमानयोः–मान और अपमान में; तुल्यः–समान रहने वाला; मित्रारिपक्षयोः–मित्र और शत्रुओं के पक्षों में; सर्वारम्भपरित्यागी–सर्व कर्मों के आरम्भों को त्यागने वाला; गुणातीतः–गुणातीत, गुणों को लाँघने वाला; सः–वह; उच्यते–कहा जाता है ।

जिल्लत–अपमान; यकसाँ–एक समान; सलूक–व्यवहार; ग़रज़–संक्षेपतः ।

भावार्थ – जो मान और अपमान में एक-समान रहता है, जो मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष में समान भाव रखता है, जिसने समस्त कर्मों का त्याग कर दिया है, वह गुणातीत कहलाता है ।

26. मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

जो ख़ादम मेरा ही परस्तार है,
जो मेरी ही भक्ति में सरशार है ।
हो तीनों गुणों से न क्यों पार वो ,
है वसल-ए ख़ुदा का सज़ावार वो ।।

शब्दार्थ – माम्–मुझको; च–भी; यः–जो; अव्यभिचारेण–अविचलित; भक्तियोगेन–भक्ति-योग से; सेवते–सेवा करता है; सः–वह; गुणान्–गुणों को; समतीत्य–लाँघकर; एतान्–इनको; ब्रह्मभूयाय–ब्रह्मरूप बनने के योग्य; कल्पते–हो जाता है ।

ख़ादम–दास; परस्तार–उपासक; सरशार–लगा हुआ; वसल-ए ख़ुदा–प्रभुदर्शन; सजावार–अधिकारी ।

भावार्थ– जो अविचलित भक्तियोग से मेरी सेवा करता है, वह इन तीनों गुणों को लाँघ कर ब्रह्मरूप बनने के योग्य हो जाता है ।

27. ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।

मेरी ज़ात ही ब्रह्म का है मकाम,
सबात-ओ बका का मुझी में क्याम ।
मैं दीन-ए अजल का भी हूँ आसरा,
मेरी ज़ात-ए आली में राहत सदा ।।

शब्दार्थ – ब्रह्मणः–ब्रह्म का; हि–ही, क्योंकि; प्रतिष्ठा–आश्रय; अहम्–मैं; अमृतस्य–अमरता का; अव्ययस्य–अविनश्वर का; शाश्वतस्य–नित्य; धर्मस्य–धर्म का; सुखस्य–सुख का; ऐकान्तिकस्य–चरम, अन्तिम; च–भी ।

ज़ात–सत्ता; मकाम–धाम; सबात-ओ बका–शाश्वत; क्याम–स्थित; दीन-ए अजल–शाश्वत धर्म; जात-ए आली–परम सत्ता; राहत–पूर्ण शान्ति ।

भावार्थ – क्योंकि अमर और अव्यय ब्रह्म का, शाश्वत धर्म का और परम आनन्द का निवास-स्थान मैं ही हूँ ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

यह संसार रूपी वृक्ष बड़ा विचित्र है। जड़ें ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर हैं। यह वृक्ष अश्वत्थ कहलाता है। यह अश्वत्थ इसलिये है क्योंकि यह अनादि है व अनंत है। यह अविनाशी है। यह अविनाशी इसलिये है कि इसमें जन्म का ताँता कभी नहीं टूटता है। आवागमन का चक्र सदा चलता ही रहता है। वेद इसके पत्ते हैं। पत्ते इसलिये हैं कि उनसे संसार की रक्षा होती है। सत्व, रज और तम गुण उसकी नसें हैं। विषय वासनाएं इसकी शाखाएं हैं। इस संसार वृक्ष तत्त्व को जानने वाला ही वास्तव में ज्ञानी है। तीनों गुणों से उत्पन्न हुये अहंकार आदि उसकी शाखाएं चारों ओर फैली हुई है। कर्मों के अनुसार उसकी जड़ें मनुष्य लोक में फैली हुई हैं।

इस संसार रूपी वृक्ष का सच्चा रूप पूर्ण रूप से कोई नहीं पहचानता है। इसके आदि एवं अंत का भी किसी को पता नहीं है। सब मजबूत जड़ वाले वृक्ष की जड़ों के वैराग्य से काटकर इसके कारण परमात्मा की खोज करनी चाहिये। उस परमात्मा के धाम में वे पहुँचते हैं जो इच्छाओं का परित्याग कर सब में समत्व का भाव रखते हैं। उस परमधाम में पहुँचने पर मानव को कभी भी वापिस नहीं आना पड़ता है। इस देह में त्रिगुणमयी माया में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है। मन और इन्द्रियों के काबू में आकर वह संसार के चक्कर में पड़ा हुआ है। इच्छा ने उसे बाँध रखा है। यह सम्पूर्ण जगत् पर वह परमात्मा की आभा मात्र की एक किरण है। क्या आप इसकी सम्पूर्ण के विषय में सोच सकते हो।

1. ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

सुन अब ऐसे पीपल का अर्जुन ब्याँ,
जड़ें जिसकी ऊपर तले डालियाँ।
शजर लाफ़ना जिसके पत्ते हैं वेद,
वो है वेद दाँ पाये जो इसका भेद।।

शब्दार्थ –ऊर्ध्वमूलम्–ऊपर की ओर जड़ों को किये हुए; अधःशाखम्–नीचे की ओर शाखाओं को किये हुए; अश्वत्थम्–पीपल का वृक्ष;

प्राहुः—कहते हैं; अव्ययम्—अविनश्वर; छन्दांसि—वेदों के छन्द; यस्य—जिसके; पर्णानि—पत्ते हैं; यः—जो; तम्—उसको; वेद—जानता है; सः—वह; वेदवित्—वेदों के ज्ञाता है ।

ब्याँ—वर्णन; शजर—वृक्ष; लाफना—अविनाशी; वेद-दाँ—वेदवेत्ता ।

भावार्थ— एक पीपल का वृक्ष है । इसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं, शाखाएँ नीचे की ओर हैं । यह वृक्ष सनातन काल से चला आ रहा है—'अव्यय' है । इस पेड़ के पत्ते वेदों के छन्द हैं । जो इस वृक्ष को जानता है वह वेदों का ज्ञाता है ।

2. अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।।

गुणों से बढ़ें डालियाँ लाकलाम,
हैं अशियाये महसूस गुंच तमाम ।
जड़ें इसकी इन्साँ की दुनियाँ तक आयें,
जकड़ कर इसे कर्म से बाँध जायें ।।

शब्दार्थ —अधः—नीचे; च—और; ऊर्ध्वम्—ऊपर; प्रसृताः—फैली हुई हैं; तस्य—उसकी; शाखाः—शाखाएँ; गुणप्रवृद्धाः—सत्व-रज-तम—इन गुणों से बढ़ी हुई; विषयप्रवालाः—इन्द्रिय-विषयों की कोंपलों वाली; अधः नीचे; च—और ; मूलानि—जड़ें; अनुसन्ततानि—फैली हुई हैं; कर्मानुबन्धीनि—कर्म के अनुसार बन्धन करने वाली; मनुष्यलोके—मानव समाज के जगत् में ।

लाकलाम—निःसन्देह; अशियाये—इन्द्रियों के विषय; गुंचे—कलियाँ ।

भावार्थ— इस वृक्ष की शाखाएँ ऊपर और नीचे को फैली हुई हैं । प्रकृति के तीन गुणों द्वारा पोषित हैं । इसकी टहनियाँ इन्द्रिय विषय हैं । इस वृक्ष की जड़ें नीचे की ओर भी जाती हैं जो मानव समाज के सकाम कर्मों से बंधी हुई हैं ।

3. न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्त्वा ।।

तसव्वर में शक्ल इसकी आये कहाँ,
न अव्वल न आखिर न जड़ का निशाँ ।
जड़ें इसकी मज़बूत हैं चार-सू,
यह शमशीर तजरीद से काट तू । ।

शब्दार्थ –न–नहीं; रूपम्–रूप; अस्य–इसका; इह–इस संसार में; तथा–वैसा; उपलभ्यते–मिलता है; अन्तः–अन्त; च–भी; आदिः–आदि; च–और; संप्रतिष्ठा– स्थिर स्थिति; अश्वत्थम्–पीपल के वृक्ष को; एनम्–इसको; सुविरूढमूलम्–गहराई तक पहुँची हुई जड़ों वाले; असंगशस्त्रेण–विरक्ति के हथियार से; दृढेन–दृढ़; छित्त्वा–काटकर ।

तसव्वर–मन में, अव्वल–आदि; आखिर–अन्त; निशाँ–चिह्न; चार-सू–चहु ओर; शमशीर–खड्ग; तजरीद–असंग ।

भावार्थ– इस वृक्ष के वास्तविक स्वरूप का अनुभव इस संसार में नहीं किया जा सकता । कोई भी व्यक्ति नहीं समझ सकता इसका आदि व अंत कहाँ हैं । लेकिन व्यक्ति को चाहिये कि इस दृढ़ मूल वाले वृक्ष को विरक्ति के शस्त्र से काट गिराए ।

4. ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्य पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी । ।

इन्हें काट कर ढूँढ फिर वो मकाम,
जहाँ जा के तू फिर न लौटे मदाम ।
तू कह ''मुझ को परमेश्वर की अमाँ,
किया जिसने हस्ती का दरिया रवां'' ''

शब्दार्थ –ततः–उस कारण से; पदम्–स्थान, गति को; तत्–उस; परिमार्गितव्यम्–खोजना चाहिये; यस्मिन्–जहाँ; गताः–जाकर; निवर्तन्ति–लौटते हैं; भूयः–फिर; तम्–उसे; एव–ही; च–और; आद्यम्–आदि में उत्पन्न; पुरुषम्–पुरुष को; प्रपद्ये–शरण में जाता हूँ; यतः–जहाँ से; प्रवृत्तिः–प्रवृत्ति; प्रसृता–विस्तीर्ण; पुराणी–पुराणी ।

मकाम–धाम; मदाम–सदा के लिए; अमाँ–शरण ।

भावार्थ– तत्पश्चात् उसे ऐसे स्थान की खोज करनी चाहिये जहाँ जाकर लौटना न पड़े और जहाँ उस परमात्मा की शरण ग्रहण कर ली जाये, जिससे अनादि काल से प्रत्येक वस्तु का सूत्रपात एवं विस्तार होता आया है ।

5. निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।।

फ़रेब-ओ तकब्बर से पा कर निजात,
हवस छोड़ कर जो रहे महव-ए ज़ात ।
तअल्लुक न सुख-दुःख के इज़दाद हों,
मकाम-ए अबद पा के दिलशाद हों ।।

शब्दार्थ –निर्मानमोहाः–मान और मोह से रहित जन; जितसंगदोषाः–जीत लिये हैं आसक्ति के दोष जिन्होंने; अध्यात्मनित्याः–नित्य (निरन्तर) आत्मा के चिन्तन में लीन; विनिवृत्तकामाः–कामनाओं से रहित, शान्त-काम, गत-स्पृहः; द्वन्द्वैः–सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से; विमुक्ताः–छूटे हुए, रहित; सुखदुःखसंज्ञैः–सुख और दुःख नाम वाले; गच्छन्ति–प्राप्त करते हैं; अमूढाः–मोह से रहित; पदम्–पद को, प्राप्तव्य को; अव्ययम्–अविनाशी; तत्–उसको ।

फ़रेब–धोखा; तकब्बर–मान; निजात–रहित होकर; हवस–लोभ; महव-ए ज़ात–आत्मा में रमण; तअल्लुक–आसक्ति; इज़दाद–द्वन्द्व; मकाम-ए अबद–परम धाम; दिलशाद–परम आनन्दित ।

भावार्थ– जो व्यक्ति अभिमान और मोह से मुक्त हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति के दोष को जीत लिया है, जो दिन-रात आत्मा में निमग्न हैं, जिनकी सब कामनाएँ शान्त हो गई हैं, जो सुख-दुःख नाम के द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं, वे अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं ।

6. न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

जले मेहर-ओ माह की न मिशल वहाँ,
न हो उस जगह आग शोलाह-फ़िशाँ ।

मकाम-ए मुअल्ला मेरा है वही,
पहुँच कर जहाँ से न लौटे कोई ।।

शब्दार्थ – तत्–उसको; भासयते–प्रकाशित करता है; सूर्यः–सूर्य; शशांकः–चन्द्रमा; पावकः–अग्नि; यद्– जिसको; गत्वा–जा कर, पहुँच कर; निवर्तन्ते–लौटते हैं; तत्–वह; धाम–स्थान, पद; परमम्–परम; मम–मेरा है ।

मेहर–सूर्य; माह–चाँद; मिशल–तेज; शोलाह-फ़िशाँ–प्रदीप्त; मकाम-ए मुअल्ला–परम धाम ।

भावार्थ – वह अव्यय पद मेरा परम धाम है । वहाँ पहुँच कर लौट कर नहीं आते । न वहाँ सूर्य को प्रकाश देना पड़ता है, न चन्द्र को, न अग्नि को । क्योंकि ये तो स्वयं उसकी ज्योति से प्रकाशित होते हैं ।

7. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।

मेरी आत्मा ही का ज़ुज़्ब-ए कदीम,
बने रूह हो एहल-ए जाँ में मकीम ।
जो माया में लिपटे हैं मन और हवास,
यही रूह खींचे उन्हें अपने पास ।।

शब्दार्थ – मम–मेरा; एव–निश्चय ही; अंशः–अंश; जीवलोके–इस जीव लोक में, देह में; जीवभूतः–शरीरधारी जीव रूप; सनातन–शाश्वत; मनःषष्ठानि–छठे मन के सहित; इन्द्रियाणि–पाँच इन्द्रियों को; प्रकृतिस्थानि–प्रकृति में ठहरे हुए; कर्षति–खींचता है, अपने साथ ले लेता है ।

जुज़्व-ए कदीम–सनातन अंश; रूह–जीवात्मा; एहल-ए जाँ–सृष्टि में; मकीम–स्थित; हवास–इन्द्रियाँ ।

भावार्थ– इस शरीर में यह अमर आत्मा मेरा अंश है और वही पाँचों इन्द्रियों और मन–इन छह को अपनी ओर खींच ले जाती है ।

8. शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।।

जहाँ ईश्वर यानी जीवात्मा,
हो इक तन में दाख़ल और इक से जुदा ।
तो साथ अपने ले जाये मन और हवास,
सबा जैसे ले जाये फूलों की बास ।।

शब्दार्थ – शरीरम्–शरीर को; यत्–जो, जिसको; अवाप्नोति–प्राप्त करता है; यत्–जिसको; च–तथा; अपि–भी; उत्क्रामति–छोड़ता है; गृहीत्वा–ग्रहण कर; एतानि–इनको; संयाति–जाता है; गन्धान्–गन्धों को; इव–जैसे; आशयात्–आशय से, मूद उद्गम–स्थान से ।

दाख़ल–प्रवेश; हवास–इन्द्रियाँ; सबा–वायु; बास–गन्ध ।

भावार्थ– इस संसार में शरीर धारण करता है और इस शरीर को छोड़ता है, तब यह इन छहों को–पाँचों इन्द्रियों और छठे मन को साथ ले जाता है, ठीक ऐसे ही जैसे वायु गन्ध को अपने आशय से, अपने उद्गम स्थान से अपने साथ ले जाती है ।

9. श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।

ज़बाँ कान मस आँख और नाक से,
इन्हें पाँच और मन के अदराक से ।
यही रूह लज़्ज़त उड़ाती रहे,
सदा लुत्फ़-ए महसूस पाती रहे ।।

शब्दार्थ – श्रोत्रम्–कान को; चक्षुः–नेत्र को; स्पर्शनम्–त्वचा को; च–भी; रसनम्–जीभ को; घ्राणम्–नाक को; एक–ही; अयम्–यह; विषयान्–इन्द्रियों के विषयों को; उपसेवते–सेवन करता है ।

मस–स्पर्श; अदराक–सम्पर्क; लज़्ज़त–भोग; लुत्फ़-ए महसूस–इन्द्रियों के सुख ।

भावार्थ– जिस समय यह 'जीव' शरीर धारण करके इस जन्म में विराजता है तब वह कान, आँख, त्वचा, जीभ, नाक और मन का आश्रय लेकर विषयों का सेवन करता है ।

10. उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।

मुसाफिर जो आया जो आ कर गया,
जो लुत्फ़ इन गुणों का उठा कर गया ।
नहीं इसको गुमराह पहचानते,
हैं ऐहल-ए बसीरत फ़कत जानते ।।

शब्दार्थ –उत्क्रामन्तम्–शरीर त्यागते हुए (जीव) को; स्थितम्–ठहरे हुए को; वा–अथवा; अपि–भी; भुंजानम्–भोग करते हुए को; वा–या; गुणान्वितम्–सत्व आदि गुणों से युक्त को; विमूढाः–मूर्ख व्यक्ति; न–नहीं; अनुपश्यन्ति–देख पाते हैं; पश्यन्ति– देखते हैं; ज्ञानचक्षुषः–ज्ञान की आँखों वाले, ज्ञानी ।

गुमराह–मूढ़; ऐहल-ए बसीरा–ज्ञान-चक्षु रखनेवाला; फ़कत–केवल ।

भावार्थ– यह जीव जो शरीर से निकल जाता है या जो शरीर में आकर जन्म लेता है और प्रकृति के सत्त्व-रज-तम–इन तीन गुणों के सम्पर्क में आकर (सात्विक, राजसिक, तामसिक) भोग भोगता है, उसे मूर्ख लोग नहीं देख पाते, परन्तु जिन के पास ज्ञान की आँख है, वे उसे देख पाते हैं ।

11. यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।।

जो योगी रियाज़त में कोशाँ रहे,
जो वो भी उसे रूह में देख ले ।
वो मूरख हैं कमजोर जिनके शऊर,
करें लाख कोशिश न पायें वो नूर ।।

शब्दार्थ –यतन्तः–साधना में यत्नशील; योगिनः–योगी; च–और; एनम्–इसको; पश्यन्ति–देख पाते हैं; आत्मनि–आत्मा में; अवस्थितम्–ठहरे हुए परमात्मा को; यतन्तः–यत्न करते हुए; अपि–भी; अकृतात्मानः–जो आत्मा को शुद्ध न कर पाये हों ऐसे

आत्म जन; न–नहीं; एनम्–इसको; पश्यन्ति–देख पाते हैं; अचेतसः–अज्ञानी ।

रियाज़त–अभ्यास; कोशाँ–लगा हुआ; रूह–निर्मल मन; शऊर–बुद्धि; नूर–ज्ञान-ज्योति ।

भावार्थ – यत्नपूर्वक साधना में लगे हुए योगी लोग आत्मा में परमात्मा को देख लेते हैं । 'अचेता' लोग, ऐसे लोग जो चित्त से, बुद्धि से काम नहीं लेते, अकृतात्मा लोग, ऐसे लोग जो अपने अन्तःकरण को कृत-कृत्य, शुद्ध नहीं कर पाये, वे यत्न करने पर भी उसे नहीं देख पाते ।

12. यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।।

यह सूरज की ताबिश मेरा नूर है,
जहाँ जिसके जलवों से मामूर है ।
रहे चाँद रखशाँ मेरे नूर से,
तो आतश दरखशाँ मेरे नूर से ।।

शब्दार्थ – यत्–जो; आदित्यगतम्–सूर्य में विद्यमान; तेजः–प्रकाश; जगद्–संसार को; भासयते–प्रकाशित कर देता है; अखिलम्–समूचे; यत्–जो; चन्द्रमसि–चन्द्रमा में; यत्–जो; च–भी; अग्नौ–आग में; तत्–वह; तेजः–प्रकाश; विद्धि–जान; मामकम्–मेरा ही ।

ताबिश–तेज़; जलवों–प्रकाश; मामूर–पूर्ण; रखशाँ–जगमगाना; आतश–अग्नि; दरखशाँ–ज्वलन्त ।

भावार्थ– सूर्य में पहुँचा हुआ तेज जो समूचे जगत् को प्रकाशित करता है, और जो तेज चन्द्रमा और अग्नि में विद्यमान है उसको तू मेरा ही तेज जान ।

13. गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।।

ज़मीं में जो करता हूँ खुद को निहाँ
तो कूअत से मेरी मिले कूअत-ए जहाँ ।
बनूँ नूर-ए महताब की आब मैं,
तो करता हूँ पौदों को शादाब मैं ।।

शब्दार्थ– गाम्–लोक में; आविश्य–प्रवेश करके; च–और; भूतानि–प्राणियों को; धारयामि–धारण करता हूँ; अहम्–मैं; ओजसा–अपने प्रताप के द्वारा; पुष्णामि–पोषण करता हूँ; च–और; औषधीः–औषधियों को; सर्वाः–सब; सोमः–चन्द्रमा' भूत्वा–होकर; रसात्मकः–रस से परिपूर्ण ।

निहाँ–छिपना; कूयत–शक्ति; कूअत-ए जहाँ–साँसारिक चेतना; नूर–तेज़; महताब–सूर्य; आब–शान; शादाब–पुष्टि ।

भावार्थ– इस पृथ्वी में प्रविष्ट होकर मैं अपने ओज से, प्रताप से सब प्राणियों को धारण करता हूँ और रस से परिपूर्ण सोम-चन्द्रमा-बनकर सब औषधियों का पोषण करता हूँ ।

14. अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।

हरारत हूँ मैं ही शिकम में निहाँ,
मैं हूँ जान वालों के तन में तवाँ ।
दरू-ओ बरूँ दम में आता हूँ मैं,
तो चारों गिज़ायें पचाता हूँ मैं ।।

शब्दार्थ –अहम्–मैं; वैश्वानरः–अग्नि के रूप; भूत्वा–होकर; प्राणिनाम्–देहधारियों के; देहम्–देह में; आश्रितः–आश्रय लेकर; प्राणापान–पाचक; समायुक्तः–प्राण और अपान से युक्त; पचामि–पचाता हूँ; अन्नम्–अन्न को; चतुर्विधम्–चार प्रकार के ।

हरारत–वैश्वानर (पाचन अग्नि); शिकम–उदर; निहाँ–छिपा हुआ; तवाँ–शक्ति; दरू–प्राण; बरू–अपान ।

भावार्थ– मैं सारे जीवों के शरीरों में पाचन अग्नि हूँ और मैं प्राणवायु में रह कर चार प्रकार के अन्नों को पचाता हूँ ।

15. **सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।**
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।।

हर इन्साँ के दिल में हूँ पिनहाँ भी मैं,
कि हूँ हाफ़ज़ा इल्म नस्याँ भी मैं ।
मैं दाना हूँ रोशन हैं सब मुझ पे वेद,
है वेदान्त मुझ से मैं वेदों का भेद ।।

शब्दार्थ – सर्वस्य–सब के; च–और; अहम्–मैं; हृदि–हृदय में; संनिविष्टः–बैठा हूँ; मत्तः–मुझसे; स्मृतिः–स्मरण करना; ज्ञानम्–ज्ञान; अपोहनम्–ज्ञान के संशय आदि दोषों का) दूर होना; च–और; वेदैः–वेदों द्वारा; सर्वैः–सब; अहम्–मैं; एव–ही; वेद्यः–ज्ञेय, जानने योग्य; वेदान्तकृत्– वेदान्त के संकलनकर्ता; वेदवित्–वेदज्ञ; एव–ही; अहम्–मैं ।

पिनहाँ–छिपा हुआ; हाफ़जा–स्मृति; इल्म–ज्ञान; नस्याँ–अभाव; दाना–बुद्धिमान ।

भावार्थ – मैं सबके हृदय में बैठा हुआ हूँ । मेरे द्वारा स्मृति और ज्ञान होता है और मेरे द्वारा अपोहन अर्थात् संशय आदि दोषों का नाश होता है; वस्तुतः मैं ही वह हूँ जिसको सब वेदों द्वारा जाना जाता है । निस्संदेह मैं वेदांत का सकलनकर्ता व सारे वेदों का ज्ञाता हूँ ।

16. **द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।**
क्षरः सर्वाणि भूतानि कुटस्थोऽक्षर उच्यते ।।

जहाँ में हैं दो तरह की हस्तियाँ,
है फ़ानी कोई और कोई जाँवदाँ ।
जहाँ की है मख़लूक फ़ानी तमाम,
अज़ल से जो बाकी है उसको दवाम ।।

शब्दार्थ – द्वौ–दो; इमौ–ये; पुरुषौ–पुरुष; लोके–संसार में; क्षरः–क्षर; च–और; अक्षरः–अनश्वर; एव–ही; क्षरः–क्षर; सर्वाणि–सब; भूतानि–जीवों को; कूटस्थः–तटस्थ; अक्षरः–अच्युत; उच्यते–कहा जाता है ।

फ़ानी–क्षर; जावदाँ–अक्षर; मख़लूक–सृष्टि; अचल–आदि से; दवाम–नित्यता ।

भावार्थ– इस संसार में नाशवान् व अविनाशी ये दो प्रकार के पुरुष हैं । इन में सम्पूर्ण भूत प्राणियों के शरीर को नाशवान् एवं आत्मा को अविनाशी कहा जाता है ।

17. उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।

वो परमेश्वर है वो परमात्मा,
जो है सब पे छाया हुआ ला-फ़ना ।
है बाकी व फ़ानी से बाला वो हक,
कि कायम हुए जिससे तीनों तबक ।।

शब्दार्थ –उत्तमः–श्रेष्ठ; पुरुषः–पुरुष; तु–परन्तु; अन्यः–दूसरा ही है; इति–इस प्रकार से; उदाहृतः–कहा जाता है; यः–जो; लोकत्रयम्–तीनों लोकों में; आविश्य–प्रवेश करके; बिभर्ति–पालन कर रहा है; अव्ययः–अविनाशी; ईश्वरः–परमात्मा ।

ला-फ़ना–अविनाशी; बाकी–क्षर; बाला–अतीत; हक–परमात्मा; कायम–स्थित; तबक–लोक ।

भावार्थ –परन्तु इन दोनों से भिन्न एक अन्य उत्तम पुरुष है जिसे परमात्मा कहा जाता है । वह अविनाशी परमात्मा है, वह तीनों लोकों में प्रवेश करके उनका पालन कर रहा है ।

18. यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।

जो फ़ानी है ज़ात उनसे मेरी बलन्द,
जो बाकी है बात उनसे मेरी बलन्द ।
है पुरुषोत्तम अपना ज़माने में नाम,
यही नाम लें वेद-दाँ और अवाम ।।

शब्दार्थ –यस्मात्–जिस कारण से; क्षरम्–क्षर (प्रकृति) से; अतीतः–परे हूँ; अहम्–मैं; अक्षरात्–अक्षर (जीव) से; अपि–भी; च–तथा; उत्तमः–उत्तम; अतः–इसलिये; अस्मि–हूँ; लोके–इस संसार में; वेदे–वेद में; च–और; प्रथितः–प्रसिद्ध; पुरुषोत्तमः–पुरुषों में श्रेष्ठ (नाम से)।

ज़ात–सत्ता; बलन्द–अतीत; बाकी–क्षर; वेद-दाँ–वेदवेत्ता; अवाम–साधारण जनता।

भावार्थ– क्योंकि वह क्षर से परे है, और अक्षर से उत्तम है, इसलिये इस संसार में और वेद में, मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रख्यात हूँ।

19. यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।

जो पुरुषोत्तम इस तरह जाने मुझे,
दिल-ए हक नज़र से जो माने मुझे।
तो भारत समझ बाख़बर है वही,
वो तन मन से करता है भक्ति मेरी।।

शब्दार्थ –यः–जो; माम्–मुझ को; एवम्–ऐसे; असम्मूढः–मोह-रहित हुआ; जानाति–जानता है; पुरुषोत्तमम्–पुरुषोत्तम को; सः–वह; सर्वविद्–सर्वज्ञ; भजति–भजता है; माम्–मुझको; सर्वभावेन–सब प्रकार से; भारत–हे अर्जुन।

दिल-ए हक–निर्मल दृष्टि वाला; बाख़बर–बुद्धिमान।

भावार्थ– हे अर्जुन! जो कोई मोह से रहित होकर परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है, समझ लो कि वह सर्वविद् हो गया, उसने सब-कुछ जान लिया; वह सर्वभाव से भजता है। वह व्यक्ति मेरी पूर्ण भक्ति में रत होता है।

20. इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।।

सिखाया तुझे भारत ऐ पाकबाज़,
यह इल्मों का इल्म और राज़ों का राज़ ।
जो समझे इसे साहिब-ए होश हो,
फ़रायज़ से अपने सुबुकदोष हो । ।

शब्दार्थ –इति–इस प्रकार; गुह्यतमम्–गुह्य से गुह्य; शास्त्रम्–शास्त्र; इदम्–यह; उक्तम्–कहा है; मया–मैंने; अनघ–हे पापरहित अर्जुन ! एतत्–यह; बुद्ध्वा–जान कर; स्यात्–हो जाये; कृतकृत्यः–कृतार्थ; च–भी; भारत–हे अर्जुन !
पाकबाज़–निष्पाप; इल्मों का इल्म–ज्ञानों का ज्ञान; राज़ों का राज़–गुह्यतम; साहिब-ए होश–परम बुद्धिमान्; फ़रायज़–कर्तव्य; सुबुकदोष–कृत-कृत्य ।

भावार्थ– हे पाप रहित अर्जुन ! यह गुह्य से गुह्य ज्ञान मैंने तुझे बतलाया है । हे अर्जुन ! इसको जानने के पश्चात् व्यक्ति ज्ञानी हो जाता है और कृतार्थ हो जाता है ।

सोलहवाँ अध्याय

यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म परमात्मा की आभा की एक किरण है । क्या आप इसकी सम्पूर्णता के बारे में सोच सकते हैं? इस संसार में दो प्रकार के लोग हैं एक हैं दैवीसम्पदा वाले और दूसरे आसुरीसम्पदा वाले । दैवीसम्पदा सम्पन्न वाले व्यक्तियों में अधोलिखित 26 गुण होते हैं–

(1) निड़रता, (2) मन की शुद्धता, (3) दान देने की प्रवृति, (4) तप, (5) त्याग, (6) इन्द्रिय निग्रह, (7) शांति, (8) अहिंसा, (9) दया भावना, (10) क्रोध न करना, (11) किसी की निंदा न करना, (12) धैर्य रखना, (13) क्षमा, (14) तेज, (15) अभिमान न करना, (16) पवित्रता, (17) किसी से शत्रुता न रखना, (18) सच्चाई, (19) गंभीरता, (20) ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करना, (21) दीनता, (22) भद्रता, (23) छलकपट न करना, (24) यज्ञ, (25) वेद, (26) सीधापन ।

इसके विपरीत दूसरी प्रकार के आसुरी सम्पदा वाले व्यक्तियों में अधोलिखित बातें होती हैं– (1) पाखंड, (2) क्रोध, (3) कठोरता, (4) अभिमान । सामान्यतः किसी भी व्यक्ति में पूरी तरह से केवल दैवी या आसुरी प्रवृतियां नहीं होती । गीता में परिश्रमपूर्वक प्रयत्न करके सकारात्मकता पाने का मार्ग दर्शाया गया है ।

दैवीसम्पत्ति मुक्ति का कारण और आसुरीसम्पत्ति बंधन का कारण होती है । दैवी सम्पत्ति सम्पन्न व्यक्तियों को देवता और असुर सम्पत्ति वाले व्यक्तियों को राक्षस नाम से पुकारा जाता है । आजकल संसार में राक्षसों की संख्या अत्यधिक है । आसुरी प्रकृति का व्यक्ति संसार को मिथ्या मानता है और यहाँ तक कि परमात्मा की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करता है । आसुरी प्रकृति के व्यक्ति सदा बुरी-बुरी असम्भव कामनाएँ किया करते हैं । वे सदा चिन्तित रहते हैं । वे सदा आशा रूपी पाश में बंधे रहते हैं । वे बेइमानी से धन कमाना चाहते हैं । वे सदा मोह में फँसे रहते हैं । काम और भोगों में फँसे रहने के कारण वे नरक को जाते हैं । काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के द्वार हैं । इन तीनों का परित्याग करके मानव शांति एवं संतोष को पा सकता है ।

1. अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।

सुन अर्जुन है क्या देवताई सफ़ात,
दिलेरी वा इल्म वा अमल में सबात ।
सखा, ज़ब्त, यज्ञ, दिल की पाकीज़गी,
तलावत, रियाज़त, सलामत-रबी ।।

शब्दार्थ – अभयम्–निर्भीकता; सत्त्वसंशुद्धिः–अन्तःकरण की विमलता; ज्ञानयोगव्यवस्थितिः–ज्ञान और योग में निष्ठा; दानम्–दान; दमः–इन्द्रियों का दमन; च–और; यज्ञः–यज्ञ करना; स्वाध्यायः–वैदिक ग्रंथों का अध्ययन; तपः–तप; आर्जवम्– सरलता ।

सफ़ात–गुण; दिलेरी–निर्भयता; इल्म–ज्ञान; अमल–कर्म; सबात–दृढ़ता; सखा–दान; ज़ब्त–दम; पाकीज़गी–पवित्रता; तलावत–स्वाध्याय; रियाज़त–तप; सलामत-रवी–सरलता ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञान और योग में निष्ठा, दान, आत्म-संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता है ।

2. अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।

अहिंसा, सदाकत करम तर्क-ए ऐश,
न फ़ितरत का चंचलपना और न तैश ।
दिल-ए बे-हवस, पुरसकूँ, तबा नर्म,
न दिल तंग होना, निगाहों में शर्म ।।

शब्दार्थ – अहिंसाः–अहिंसा; सत्यम्–सत्य; अक्रोधः–क्रोध का न होना; अपैशुनम्–परदोषाविष्करण न करना; दया–दया; भूतेषु–प्राणियों पर; अलोलुप्त्वम्–लोभ से मुक्ति; मार्दवम्–कोमलता; ह्रीः–लज्जा; अचापलम्–चपलता न होना ।

सदाकत–सत्यता; करम–दया; तर्क-ऐ ऐश–त्याग; फ़ितरत–स्वभाव; तैश–क्रोध; बे-हवस–निर्लोभता; पुरसकूँ–प्रशान्त; तबा–कोमलता ।

भावार्थ – अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दूसरों के दोष न ढूँढना, प्राणियों पर दया, लोभ न होना, स्वभाव में मृदुता, लज्जाशीलता और संकल्प ।

3. तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।

सबूरी, सफ़ा, ज़ोर, उफव-ए ख़ता,
हसद से तकब्बर से रहना जुदा ।
जब इन नेक वसफ़ों पे मायल है वो,
तो इन्साँ फ़रिशता खसायल है वो ।।

शब्दार्थ –तेजः–तेज; धृतिः–धैर्य; शौचम्–पवित्रता; अद्रोहः–द्रोह न होना; अतिमानिता–अधिक अभिमान होना; भवन्ति–होते हैं; संपदम्–गुण; दैवीम्–दिव्य; अभिजातस्य–जन्मे हुए का; भारत–हे अर्जुन ।

सबूरी–धैर्यता; सफ़ा–पवित्रता; जोर–शक्ति; उफव-ए ख़ता–क्षमाशीलता; हसद–द्रोहाभाव; तकब्बर–अहंकार; ज़ुदा–रहित; बसफ़ों–शुभ गुण, मायल–जुटा हुआ; फ़रिशता–दैवी स्वभाव ।

भावार्थ– तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेष न होना, अत्यन्त अभिमान न होना–ये सब तो हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं । उस व्यक्ति के गुण हैं जो 'दैवी-संपदा' लेकर जन्म लेता है ।

4. दम्भौ दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ।।

दो रंगी, ग़रूर व नुमाइश ग़ज़ब,
सुख़न तलख बातें जहालत की सब ।
इन्हीं से उस इन्साँ की पहचान है,
सदा से जो फ़ितरत का शैतान है ।।

शब्दार्थ –दम्भः–पाखण्ड; दर्पः–घमण्ड; च–और; पारुष्यम्–कठोरता; एव–ही; च–और; अज्ञानम्–अज्ञान; अभिजातस्य–जन्म लिये हुए की; पार्थ–हे अर्जुन; संपदम्–सम्पत्ति को; आसुरीम्–आसुरी, असुरों की ।

दो-रंगी–दम्भ; गरूर–घमण्ड; नुमाइश–दिखावा; गजब–क्रोध; सुखन-तलख–कटुवचन

भावार्थ –हे अर्जुन! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान–ये सब आसुरी सम्पदा लेकर उत्पन्न हुये व्यक्तियों के गुण हैं।

5. दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।

हैं नेकी ख़्सायल रहाई पसन्द,
शियातों की ख़िसलत से हो क़ैद-ओ बन्द।
तुझे रंज-ओ ग़म क्या है पाण्डू के लाल,
कि फ़ितरत से तू है फ़रिश्ता खिसाल ।।

शब्दार्थ –दैवी–दैवी; संपद्–सम्पत्ति या गुण; विमोक्षाय–मोक्ष प्रदान के लिये; निबन्धाय–बन्धन में डालने के लिये; आसुरी–आसुरी; मता–मानी जाती है; मा–मत; शुचः–शोक कर; सम्पदम्–सम्पत्ति को; दैवीम्–दैवी को; अभिजातः–लेकर उत्पन्न है; असि–तू है; पाण्डव–हे अर्जुन।

नेकी ख़्सायल–शुभ गुण; रहाई–स्वतंत्रता; शियातीं–आसुरी सम्पदा; क़ैद-ओ बन्द–बन्धन; रंज-ओ ग़म–दुःख एवं चिन्ता; फ़ितरत–स्वभाव; फरिशता–दैवी स्वभाव वाला।

भावार्थ– दैवी गुण मोक्ष देनेवाले और आसुरी गुण बन्धन में डालने वाले हैं। हे अर्जुन! तू दुःखी मत हो क्योंकि तू दैवी गुण लेकर उत्पन्न हुआ है।

6. द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।।

ज़माने में जितने भी इन्साँ हुए,
फ़रिश्ते कोई, कोई शैताँ हुए।
सुना है मुफ़स्सल फ़रिश्तों का हाल,
जो शैताँ हैं सुन उनका अब हाल-चाल।।

शब्दार्थ –द्वौ–दो; भूतसर्गौ–प्राणियों की सृष्टि; लोके–इस संसार में; अस्मिन्–इस; दैवः–दैवीय; आसुरः–आसुर; एव–ही; च–और; विस्तरशः–विस्तार से; प्रोक्तः–कहा है; आसुरम्–आसुरी को; पार्थ–हे अर्जुन; मे–मेरा; शृणु–सुनो।

भूतों–प्राणियों; मुफस्सल–विस्तारपूर्वक ।

भावार्थ– इस संसार में दो प्रकार के प्राणियों की सृष्टि है–दैवी तथा आसुरी । हे अर्जुन ! दैवी का विस्तार से वर्णन किया जा चुका है, अब मुझ से आसुरी गुणों के विषय में सुनो ।

7. प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।

ख़बासत के पुतले उन्हें क्या तमीज़,
यह करने की है, वो न करने की चीज़ ।
न सत् उनके अन्दर न पाकीज़ापन,
मुअर्रा है शायस्तगी से चलन ।।

शब्दार्थ – प्रवृत्तिम्–कर्म में प्रवृत्ति को; च–और; निवृत्तिम्–कर्म से निवृत्ति को; जनाः–लोग; न–नहीं; विदुः–जानते हैं; आसुराः– आसुरी प्रकृति के लोग; शौचम्–पवित्रता; अपि–भी; आचारः– शिष्टाचार; सत्यम्–सत्य; तेषु–उनमें; विद्यते–होता है ।
ख़बासत–आसुरी स्वभाव वाले; तमीज़–विवेक; पाकीज़ापन– निर्मलता; मुअर्रा–रहित; शायस्तगी–श्रेष्ठ आचरण; चलन– स्वभाव ।

भावार्थ – आसुरी-प्रकृति के लोग न यह जानते हैं कि क्या करना चाहिये, न यह जानते हैं कि क्या नहीं करना चाहिये–उन्हें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का ज्ञान नहीं होता । उनमें न पवित्रता पायी जाती है, न सदाचार पाया जाता है, न सत्य पाया जाता है ।

8. असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।।

वो कहते हैं झूठा है संसार सब,
न इसकी है बुनियाद कोई न रब ।
करें मरद-ओ जन मिलके जब मस्तियाँ,
उन्हीं मस्तियों से हो सब हस्तियाँ ।।

शब्दार्थ – असत्यम्–असत्य; अप्रतिष्ठम्–आधाररहित; ते–वे; आहुः–कहते हैं; अनीश्वरम्–इसका कोई ईश्वर नहीं; अपरस्परसम्भूतम्–समाज

परस्पर व्यक्तियों के मेल से नहीं बना; किम्—क्या; अन्यत्—और; कामहैतुकम्—वैयक्तिक कामनाओं की पूर्ति के प्रयोजनवाला ।
बुनियाद—आधार; मरद-ओ जन—नर और नारी; मस्तियाँ—भोग-विलास ।

भावार्थ —यह जगत् मिथ्या है, इसका कोई आधार नहीं है, इसका कोई ईश्वर नहीं है, यह समाज में व्यक्तियों के परस्पर मिलने-जुलने से नहीं बना है अपितु कामेच्छा से ही बना है । इसके अतिरिक्त इस संसार के बनने का दूसरा कोई कारण नहीं है ।

9. एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।

जो हैं इन ख़्यालों के बद-कुन बशर,
वो खूंखार बे-रूह कोता नज़र ।
अदू बन के दुनियाँ में आते रहें,
जहाँ में तबाही मचाते रहें ।।

शब्दार्थ —एताम्—इस; दृष्टिम्—दृष्टिकोण को; अवष्टभ्य—पकड़ कर; नष्टात्मानः—नष्ट आत्मा वाले; अल्पबुद्धयः—क्षुद्रबुद्धि वाले; प्रभवन्ति—समर्थ होते हैं; उग्रकर्माणः—भारी भीषण कर्म करने वाले; क्षयाय—नाश के लिये; जगतः—संसार के; अहिताः—अनुपयोगी ।
बद-कुन—बुरे कर्मों वाले; बशर—मनुष्य; खूँखार—हिंसावादी; बे-रूह—तंग दिल; कोता-नज़र—मन्द बुद्धि; अदू—शत्रु ।

भावार्थ —इस दृष्टिकोण को पकड़ कर ये अल्पबुद्धि, नष्टात्मा, भयंकर कर्म करने वाले लोग जगत् के शत्रु बनकर उसके विनाश के लिये उभरा करते हैं ।

10. काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।

तकब्बर, रिया और बनावट से काम,
वो तस्का न पायें हवस के गुलाम ।
वो खायें फ़रेब-ए-ख़्यालात-ए बद,
बदी में दिखायें सदा शद-ओ मद् ।।

शब्दार्थ –कामम्–लालसा; आश्रित्य–आश्रय लेकर; दुष्पूरम्–कभी न पूरी होने वाली; दम्भमानमदान्विताः–दम्भ, मान और मद से युक्त लोग; मोहात्–मूढता से; गृहीत्वा–ग्रहण करके; असद्ग्राहान्–बुरे आग्रहों (सिद्धान्तों) को, आसुरी इच्छाओं को; प्रवर्तन्ते–प्रवृत्त होते हैं; अशुचिव्रताः–अपवित्र निश्चय करने वाले ।

तकब्बर–घमण्ड; रिया–धोखा; तस्कीं–शान्ति; हवस–लोभ; गुलाम–दास; फरेब–धोखा; ख़्यालात–विचार; शद-ओ मद–उत्साह ।

भावार्थ– कभी तृप्त न होने वाली लालसा का आश्रय लेकर, दम्भ, मान और मद से युक्त मोह के कारण असद् ग्रहों–दुष्ट, आसुरी इच्छाओं को ग्रहण करके–अपवित्र निश्चयों को मन में लेकर कार्य में प्रवृत्त होते हैं ।

11. चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।

ग़म-ए बे-हिसाब उनको दिन हो कि रात,
मिले फ़िकर दुनियाँ से मर कर निज़ात ।
है मक्सूद उनका हवस रानियाँ,
हैं मद्द-ए नज़र ऐश सामानियाँ ।।

शब्दार्थ –चिन्ताम्–चिन्ता को; अपरिमेयाम्–अपार को; च–और; प्रलयान्ताम्–प्रलय तक; उपाश्रिताः–आश्रय लिये हुए; कामोपभोग-परमाः–कामनाओं के भोग में तत्पर; एतावत्–ऐसा, इतना; इति–ही, इस प्रकार का; निश्चिताः–निश्चय किये हुए ।

ग़म-ए बे-हिसाब–अगणित; निज़ात–मुक्ति; मक्सूद–उद्देश्य; हवसरानियाँ–लोभ-प्रवृत्ति; मद्द-ए नज़र–दृष्टिकोण; ऐश-सामानियाँ–काम-प्रवृत्ति ।

भावार्थ– अपार चिन्ताओं में, जो सृष्टि के प्रलय पर ही जाकर कहीं समाप्त होंगी, पड़े हुए, कामनाओं के परम भोगी, भोग ही सर्वस्व है–यह जिन्होंने निश्चय कर लिया है ।

12. आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ।।

उमीदों के फन्दों में अटके हुए,
ग़ज़ब और शाहवत में लटके हुए ।
बदी से वो दौलत कमाते रहें,
जो ऐश-ओ तरब में गवाते रहें ।।

शब्दार्थ – आशापाशशतैर्बद्धाः—सैकड़ों लालसाओं के जाल में; बद्धाः—बन्धे हुए; कामक्रोधपरायणाः—काम, क्रोध, के अधीन हुए; ईहन्ते—चाहते हैं; कामभोगार्थम्—कामनाओं की तृप्ति के लिये; अन्यायेन—अवैध रूप से; अर्थसंचयान्—धन-संग्रह को ।
उमीदों—आशाओं; ग़ज़ब—क्रोध; शाहवत—काम; ऐश-ओ तरब—भोग-विलास ।

भावार्थ – लालसाओं के सैकड़ों जालों में फँसे हुए, काम और क्रोध के पंजे में बंधे हुए ये अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिये अवैध ढंग अन्याय से धनसंग्रह करते हैं ।

13. इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।

वो कहता है आज एक पाई मुराद,
तो कल दूसरी हाथ आई मुराद ।
यह दौलत मेरी है, यह धन है मेरा,
मेरे पास ही ये रहेंगे सदा ।।

शब्दार्थ – इदम्—यह; अद्य—आज; मया—मैंने; लब्धम्—प्राप्त कर लिया; इमम्—इसको; प्राप्स्ये—प्राप्त कर लूँगा; मनोरथम्—अभिलक्षित वस्तु को; इदम्—यह; अस्ति—मेरे पास है; इदम्—यह; अपि—भी; मे—मेरे पास; भविष्यति—होगा; पुनः—फिर; धनम्—धन ।
मुराद—कामना ।

भावार्थ – यह आज मैंने प्राप्त कर लिया है; इस मनोरथ को पूरा कर लूँगा; यह तो मेरे पास है ही, फिर वह धन भी मेरा हो जाएगा ।

14. असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।

किया एक दुश्मन को मैंने हलाक,
करूँगा मैं औरों को अब ज़ेर-ए ख़ाक ।
सुखी हूँ कवी हाकम-ए पुरज़लाल,
मज़े ले रहा हूँ कि हूँ बा-कमाल ।।

शब्दार्थ – असौ–वह; मया–मैंने; हतः–मार दिया है; शत्रुः–शत्रु; हनिष्ये–मारूँगा; च–भी; अपरान्–दूसरों को; अपि–भी; ईश्वरः–स्वामी; अहम्–मैं; बलवान्–बलवान् ।
हलाक–मारना; ज़ेर-ए खाक–मारना; कवी–बलशाली; हाकम–शासक; पुरज़लाल–ऐश्वर्ययुक्त; वा-कमाल–सिद्धि ।

भावार्थ – इस शत्रु को मैंने मार लिया, अन्य शत्रुओं को भी मार डालूँगा । मैं ईश्वर हूँ, मैं ही भोग करने वाला हूँ, मैं सिद्ध हूँ–सफल हूँ–शक्तिशाली और सुखी हूँ ।

15. आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।

मैं धनवान मेरा घराना शरीफ़,
भला कौन होता है मेरा हरीफ़ ।
मैं लूंगा मज़े यज्ञ से और दान से,
यूँही खाये धोखा वो अज्ञान से ।।

शब्दार्थ – आढ्यः–धनवान्; अभिजनवान्–उच्च कुल में उत्पन्न, बहुकुटुम्बी; अस्मि–हूँ; कः–कौन; अन्यः–अन्य; अस्ति–है; सदृशः–समान; मया–मुझसे (मेरे); यक्ष्ये–यज्ञ करूँगा; दास्यामि–दूँगा; मोदिष्ये–आनन्द लूँगा; इति–इस प्रकार से; अज्ञानविमोहिताः–अज्ञानवश मोहग्रस्त हैं ।
हरीफ़–बराबरी करने वाला ।

भावार्थ – मैं धनवान् हूँ, ऊँचे कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, मौज करूँगा–इस प्रकार ऐसे व्यक्ति अज्ञानवश मोहग्रस्त होते रहते हैं ।

16. अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।

ख़्यालों के फँदों में जकड़े हुए,
हैं तोहम के जालों में पकड़े हुए ।
तैश से जो को लगाते हैं वो,
तो नापाक दोजख में जाते हैं ।।

शब्दार्थ – अनेकचित्तविभ्रान्ताः–चित्त की अनेक भ्रान्तियों में पड़े हुए; मोहजालसमावृताः–मोह के जालों से घिरे हुए; प्रसक्ताः–चिपटे हुए फँसे हुए; कामभोगेषु–कामनाओं के भोगों में; पतन्ति–गिरते हैं; नरके–नरक में; अशुचौ–अपवित्र ।

तोहम–मोहजाल; तैश–भोग-पदार्थ; नापाक–कुम्भी नरक ।

भावार्थ – चित्त की अनेक भ्रान्तियों में पड़े हुए, मोह-जाल से घिरे हुए, विषय और भोगों में आसक्त हुए ये (आसुरी प्रकृति के लोग) अपवित्रतापूर्ण नरक में जा गिरते हैं ।

17. आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।

वो मगरूर जिद्दी हैं और ख़ुद परस्त,
वो दौलत के नशे में रहते हैं मस्त ।
जो करते हैं यज्ञ भी तो बहर-ए नमूद,
नहीं पाये बन्द-ऐ रसूम-ओ कयूद ।।

शब्दार्थ – आत्मसम्भाविताः–अपनी स्तुति में निरत; स्तब्धाः–घमंडी, हठी; धनमानमदान्विताः–धन, मान और मद से युक्त; यजन्ते–यजन करते हैं; नामयज्ञैः–नाम के लिये या नाममात्र यज्ञों से; ते–वे; दम्भेन–पाखण्ड के कारण; अविधिपूर्वकम्–बिना किसी यज्ञ के विधान को मानते हुए ।

मगरूर–अभिमानी; खुद-परस्त–अपने आपको श्रेष्ठ मानने वाला; बहर-ए नमूद–नाममात्र; पायेबन्द–जुटना; रसूम–रीति; कयूद–विधि ।

भावार्थ – अपनी स्तुति आप करने वाले, घमंडी, धन तथा मान के मद में मस्त दम्भ से–पाखण्ड के साथ–शास्त्र की विधि को छोड़कर नाम के लिये यज्ञ किया करते हैं ।

18. अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।

वो ग़ुस्ताख़ पुर कीना-ओ पुर-गरूर,
ख़ुदी मस्ती-ओ तैश-ओ ताकत में चूर ।
मैं ख़ुद उनके तन में हूँ या ग़ैर के,
न ख़ैर उनसे पहुँचे सिवा वैर के ।।

शब्दार्थ – अहंकारम्–अहंकार को; बलम्–बल को; दर्पम्–घमण्ड को; कामम्–काम-वासना को; क्रोधम्–क्रोध को; च–और; संश्रिताः–शरणागत; माम्–मुझको; आत्मपरदेहेषु–अपने और दूसरों के देहों में; प्रद्विषन्तः–निन्दा करते हुए; अभ्यसूयकाः–इर्ष्यालु ।

ग़ुस्ताख़–क्रोधी; पुरकीना–द्वेषी; पुर-गरूर–अहंकारी; ख़ुदी–अहंपना; मस्ती–मद; तैश–क्रोध; चूर–भरे हुए; ख़ैर–भलाई; वैर–शत्रुता ।

भावार्थ – अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध के वश में होकर ये दूसरे की निन्दा करने वाले मुझ से, जो उनके देह में भी वर्तमान है, दूसरों के देह में भी वर्तमान है, द्वेष करते हैं ।

19. तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।

ये हासद कमीने ज़फाकार लोग,
ये जिल्लत के पुतले ये खूँख़्वार लोग ।
न जिल्लत से उनको निकालूँगा मैं,
शिकम में श्यातीं के डालूँगा मैं ।।

शब्दार्थ– तान्–उनको; अहम्–मैं; द्विषतः–द्वेष करने वालों को; क्रूरान्–शरारती लोगों की; संसारेषु–लोकों में; नराधमान्–नीच पुरुषों को; क्षिपामि–डालता हूँ; अजस्रम्–लगातार; अशुभान्–अशुभ कार्य करने वाले; आसुरीषु–आसुरी; एव–ही; योनिषु–योनियों में ।

हासद–द्वेषी; कमीने–गन्दे; जफाकार–क्रूरकर्मी; जिल्लत–नीच; खूँखार–हिंसात्मक; ज़िल्लत–अपमान; शिकम–पेट (योनि); श्यातीं–आसुरी ।

भावार्थ – इन द्वेष करने वाले क्रूर व्यक्तियों को, जो संसार में नराधम हैं, अशुभ हैं, बार-बार उनके फलानुसार आसुरी योनियों में डालता रहता हूँ ।

20. आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।

शिकम में श्यातीं के होकर मकीं,
ये बहके हुए मुझ तक आते नहीं ।
ये अर्जुन जनम पर जनम पायेंगे,
ये गिरते ही गिरते चले जायेंगे ।।

शब्दार्थ– आसुरीम्–आसुरी; योनिम्–योनि को; आपन्नाः–प्राप्त हुए; मूढाः–मूर्ख; जन्मनि–जन्माजन्मान्तरों में; माम्–मुझको; अप्राप्य–न प्राप्त कर; एव–ही; कौन्तेय–हे अर्जुन; ततः–फिर, वहाँ से, उससे; यान्ति–करते जाते हैं; अधमाम्–नीच; गतिम्–गति को ।

मकीं–स्थित; बहके–भटके हुए ।

भावार्थ – जन्म-जन्म में आसुरी योनियों में पड़े हुए ये मूर्ख व्यक्ति, हे अर्जुन, क्योंकि मुझे पा नहीं सकते, इसलिये मुझे न पाने से इससे भी अधिक नीचगति को जाते हैं ।

21. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

जहन्नुम के हैं तीन दर ला-कलाम,
तमा, शाहवत और गुस्सा जिनके हैं नाम ।
उन्हें छोड़ उनमें न जाना कहीं,
न हस्ती को अपनी मिटाना कहीं ।।

शब्दार्थ –त्रिविधम्–तीन प्रकार का; नरकस्य–नरक का; इदम्–यह; द्वारम्–द्वारः; नाशनम्–नाश करने वाला; आत्मनः–आत्मा का, अपना; कामः–काम; क्रोधः–क्रोध; लोभः–लोभ; तस्मात्–इस कारण से; एतत्–इन; त्रयम्–तीनों को; त्यजेत्–छोड़ दे ।

जहन्नम–नरक; दर–द्वार; ला-कलाम–निःसन्देह; तमा–लोभ; शाहवत–काम; गुस्सा–क्रोध; हस्ती–जीवात्मा ।

भावार्थ – काम, क्रोध, लोभ ये तीन प्रकार के नरक व द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं। अतः व्यक्ति को इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

22. एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।

तमोगुण को जाते हैं ये तीन दर,
जो इनसे बचे वो रहे बे-खतर।
मिले उसको आनन्द कुन्ती के लाल,
उसी को मुयस्सर हो औज़-ए कमाल।।

शब्दार्थ – एतैः–इनसे; विमुक्तः–छूटा हुआ; कौन्तेय–हे अर्जुन; तमोद्वारैः–अन्धकार की ओर ले जाने वाले द्वारों से; त्रिभिः–तीनों से; नरः–मनुष्य; आचरति–आचरण करता है; आत्मनः–आत्मा का, अपना; श्रेयः–कल्याण को; ततः–फिर; याति–पहुँचता है; पराम्–श्रेष्ठ; गतिम्–गति को।

बे-ख़तर–सुरक्षित; मुयस्सर–प्राप्ति; औज-ए कमाल–परम सिद्धि।

भावार्थ – हे अर्जुन! जो व्यक्ति इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त होकर अपने कल्याण मार्ग का अनुसरण करता है। वही परमगति को प्राप्त करता है।

23. यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

जो इन्साँ चले शास्त्र के ख़िलाफ़,
हवस के हो ताबा करे इनहराफ़।
मिले उसको राहत न औज़-ए कमाल,
रहे दूर उससे मकाम-ए वसाल।।

शब्दार्थ – यः–जो; शास्त्रविधिम्–शास्त्रोक्त विधान को; उत्सृज्य–त्यागकर; वर्तते–आचरण करता है; कामकारतः–मनमाने तरीके से; न–नहीं; सः–वह; सिद्धिम्–सिद्धि को; अवाप्नोति–प्राप्त करता है; सुखम्–सुख को; पराम्–परम; गतिम्–गति को।

ख़िलाफ़–विपरीत; हवस–लोभ; ताबा–आधीन; इनहराफ़–अवज्ञाकारी; राहत–शान्ति; औज-ए कमाल–परम सिद्धि; मकाम-ए बसाल–प्रभु-प्राप्ति।

भावार्थ –जो व्यक्ति शास्त्र के विधान को छोड़कर मनमाना आचरण करने लगता है, उसे न सफलता मिलती है, न सुख मिलता है, न परम गति ही मिलती है ।

24. तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

फ़कत शास्त्र को बना रहनुमा,
कि करना है क्या और न करना है क्या ।
बस अब धर्म पर दिल दिये जा मदाम,
अमल शास्त्र पर किये जा मदाम ।।

शब्दार्थ –तस्मात्–इसलिये; शास्त्रम्–शास्त्र; प्रमाणम्–प्रमाण है, निर्णायक है; ते–तेरा; कार्याकार्यव्यवस्थितौ–क्या करें क्या न करें इस बात की व्यवस्था में; ज्ञात्वा–जानकर; शास्त्रविधानोक्तम्– शास्त्र की विधि द्वारा विहित; कर्म–कर्म को; कर्तुम्–करने के लिये; इह–इस लोक में; अर्हसि–तुम्हें चाहिये ।

फ़कत–केवल मात्र; रहनुमा–पथ-प्रदर्शक; मदाम–सदा; अमल–प्रवृत होना ।

भावार्थ – इसलिये क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये–इस बात की व्यवस्था के लिये तू शास्त्र को ही प्रमाण समझ । शास्त्र में जो विधान बतलाया गया है, जो नियम बतलाये गये हैं, उन्हें जानकर तुझे इस संसार में अपना काम करते जाना चाहिये ।

सतरहवाँ अध्याय

श्रद्धा, भोजन, यज्ञ, तप एवं दान—इन सभी के सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीन भेद किये गये हैं। सात्विक श्रद्धावाले देवी की, राजसिक श्रद्धा वाले यज्ञों की और तामसिक श्रद्धावाले भूतप्रेत आदि की उपासना करते हैं। सात्विक प्रकृति वालों के भोजन, यज्ञ, दान, तप आदि दूसरे ही प्रकार के होते हैं। राजसिक एवं तामसिक स्वभाव वालों के ये और ही प्रकार के होते हैं। आयु बढ़ाने वाला, बलदायक और आरोग्यवर्धक रसदार एवं स्निग्ध भोजन सात्विक व्यक्ति को अच्छा लगता है। अधिक मिर्च और खटाई वाला भोजन राजसिक स्वभाव वाले को अच्छा लगता है। सड़ा, अपवित्र भोजन तामसिक स्वभाव वाले को अच्छा लगता है। सात्विक मनुष्य बिना किसी फल की इच्छा के कर्त्तव्य समझकर यज्ञ करते हैं। राजसिक व्यक्ति फल की इच्छा और कपट से यज्ञ करते हैं। तामस प्रकृति के व्यक्ति बिना विधान के बिना श्रद्धा के, बिना मंत्रों और दक्षिणा के यज्ञ करते हैं। तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देव गुरु और ज्ञानियों की पूजा, शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शारीरिक तप है। सत्य, प्रिय एवं कल्याणकारी ऐसा वचन बोलना जो किसी के हृदय को न दुखाये एवं स्वाध्याय करना यह वाचिक तप है। मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, मनोनिग्रह और भावों को शुद्ध रखना यह मानसिक तप है। बिना फल चाहे श्रद्धा से जो तप किया जाता है वह सात्विक तप है। मान, सत्कार और पूजा की इच्छा से किया जाने वाला तप राजसिक तप, मूर्खतावश केवल शरीर को सताने वाला तप तमोगुणी है।

दान देना ही कर्त्तव्य है जो दान देश, काल एवं पात्र के अनुकूल यश की प्राप्ति की इच्छा किये बिना गुप्तरूप से दिया जाता है वह सात्विक दान है। परन्तु जो दान फल को दृष्टि में रखकर यश प्राप्ति के लिये देश, काल और पात्र को दिया जाता है वह राजस दान है। इसके विपरीत जो दान अयोग्य और कुपात्र को दिया जाता है वह तामस दान है।

ओ३म् तत् सत् - ऐसे ये तीन प्रकार का सच्चिदानंद धन ब्रह्मा का नाम कहा गया है। उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण वेद, यज्ञ आदि रचे गये। अतः वेदमंत्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्रविधि से युक्त

यज्ञ, दान और तप क्रियाएं सदा ओ३म् परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। प्रभु के बिना श्रद्धा एवं विश्वास के जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसके साथ ही स्वयं में आत्मविश्वास भी अनिवार्य है। लोग कहते हैं—विश्वास पर्वत को हिला देता है और पर्वत कहता है— मैं इस सत्य को जानता हूँ।

1. ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।

जो यज्ञ करने वाले हैं एहल-ए यर्की,
मगर शास्त्र पर जो चलते नहीं।
तो फरमाइये वो सतोगुण पे हैं,
कि आमल रजोगुण तमोगुण पे है?

शब्दार्थ —ये—जो; शास्त्रविधिम्—शास्त्र के विधान को; उत्सृज्य—छोड़कर; यजन्ते—यज्ञ करते हैं; श्रद्धया—श्रद्धा से; अन्विताः—युक्त; तेषाम्—उनकी; निष्ठा—निष्ठा, मानसिक स्थिति; तु—तो; का—कैसी होती है; कृष्ण—हे कृष्ण; सत्त्वम्—सत्त्वगुण वाली; आहो—अथवा; रजः—रजोगुण वाली; तमः—तमोगुण वाली।
एहल-ए यर्की—श्रद्धालु; आमल—कर्ता।

भावार्थ —हे कृष्ण! जो लोग शास्त्रों के विधि-विधानों की परवाह न करते हुए, श्रद्धा से युक्त होकर यज्ञ करते हैं, उनकी निष्ठा-मानसिक स्थिति सात्त्विक होती है, राजसिक होती है, या तामसिक होती है।

2. त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु।।

कहा सुन के भगवान ने यह सवाल,
मुताबिक है फ़ितरत के ईमाँ का हाल।
कि ईमाँ के अन्दर भी हैं तीन गुण,
सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण तू सुन।।

शब्दार्थ —त्रिविधा—तीन प्रकार की; भवति—होती है; देहिनाम्—मनुष्यों की; सा—वह; स्वभावजा—स्वभाव से उत्पन्न; सात्त्विकी—सात्त्विकी श्रद्धा; राजसी—राजसी श्रद्धा; एव—ही; तामसी—तामसी श्रद्धा;

च–और; इति–इस प्रकार से; ताम्–उसको; शृणु–सुन ।
मुताबिक–अनुसार; फ़ितरत–स्वभाव; ईमाँ–श्रद्धा ।

भावार्थ – प्राणीमात्र की श्रद्धा तीन प्रकार की होती है । श्रद्धा के ये तीन प्रकार उनके स्वभाव से उत्पन्न होते हैं । ये सात्विकी श्रद्धा, राजसिकी श्रद्धा और तामसिकी श्रद्धा हैं । अब इन तीनों के विषय में सुन ।

3. सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।

कि जो जिसकी फ़ितरत का आहंग है,
वही उसके ईमाँ का भी रंग है ।
कि इन्सा खुद इमाँ की तफ़सीर है,
अक़ीदा ही इन्साँ की तसवीर है ।।

शब्दार्थ – सत्त्वानुरूपा–सत्व (अन्तःकरण चितवृत्ति) के अनुसार; सर्वस्य–सब की; भवति–होती है; भारत–हे अर्जुन; श्रद्धामयः–श्रद्धा से युक्त; अयम्–यह; पुरुषः–मनुष्य; यः–जो; यच्छ्रद्धः–जैसी श्रद्धा वाला होता है; सः–वह; एव–ही; सः–वह ।
फ़ितरत–स्वभाव; आहंग–गुण; ईमाँ–श्रद्धा; तफ़सीर–व्याख्या; अक़ीदा–श्रद्धा; तसवीर–चित्र ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! सब लोगों की श्रद्धा अपने स्वभाव के अनुसार होती है । मनुष्य स्वभाव से ही श्रद्धामय है । जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है ।

4. यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।।

सतोगुण तो पूजेंगे देवों को बस
रजोगुण मगर यज्ञ और राक्षस ।
तमोगुण के बन्दे हैं सबसे अलग,
कि वो भूत परेतों को देते हैं यज्ञ ।।

शब्दार्थ– यजन्ते–पूजा करते हैं; सात्त्विकाः–सात्त्विक वृति वाले लोग; देवान्–देवताओं को; यक्षरक्षांसि–यक्ष और राक्षसों को; राजसाः–रजोगुण वृत्ति वाले; प्रेतान्–प्रेतों को; भूतगणान्–भूतों

के समूहों को; च—और; अन्ये—दूसरे; यजन्ते—पूजा करते हैं; तामसाः—तामसिक वृत्तिवाले; जनाः—लोग ।

भावार्थ —सात्त्विक स्वभाव वाले व्यक्ति देवताओं की श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, राजसिक स्वभाववाले यक्षों और राक्षसों की श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, तामसिक स्वभाव वाले भूतों-प्रेतों की श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं ।

5. अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।

जो तप में उठाते हैं रंज-ओ तअसब,
उलट शास्त्र के करें काम सब ।
वो मक्कार खुद-बीं हैं और सख्त गौश,
भरी इनमें है कूअत-ए हिरस-आ जोश ।।

शब्दार्थ —अशास्त्रविहितं—शास्त्रविरुद्ध; घोरम्—हानिप्रद; तप्यन्ते—तप करते हैं; ये—जो; तपः—तप को; जनाः—मनुष्य; दम्भाहंकारसंयुक्ताः—अहंकार से युक्त; कामरागबलान्विताः— काम (वासना, तृष्णा), राग (आसक्ति) और शारीरिक बल से युक्त ।

रंज-ओ तअब—कष्ट; मक्कार—दम्भी; ख़ुद-बीं—अहंकारी; सखत-कोश—परिश्रमी; कूअत—बल; हवस—लोभ; जोश—काम ।

भावार्थ — कई लोग श्रद्धा में निरे मूर्ख होते हैं । वे समझते हैं कि अपने शरीर को कष्ट देने से भगवान् मिल जाते हैं । ऐसे अन्ध-श्रद्धा वाले अहंकार से युक्त होकर काम और आसक्ति के बल पर उग्र तपों को करते हैं जिन तपों का शास्त्रों में कहीं भी विधान नहीं है ।

6. कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।

करें वो दुःखी पांच तत का बदन,
मुझे भी जो इस तन में हूँ ख़ेमा-ज़न ।
बाज़ाहिर तो हर चन्द इन्साँ हैं वो,
तो अज़्म उनका देखो तो शैतां हैं वो ।।

शब्दार्थ – कर्षयन्तः–कष्ट देते हुए; शरीरस्थम्–शरीर में ठहरे हुए; भूतग्रामम्–पंचमहाभूतों के समूह को; अचेतसः–मूढजन; माम–मुझको; च–और; एव–ही; अन्तःशरीरस्थम्–शरीर के अन्दर विद्यमान; तान्–उनको; विद्धि–जान; आसुरनिश्चयान्–आसुरी बुद्धि वाले ।

खेमा-जन–स्थित; बाज़ाहिर–बाहरी रूप में; अज़्म–निश्चय; शताँ–राक्षस ।

भावार्थ – ये अपनी मूर्खता के कारण अपने शरीर में विद्यमान पंच महाभूतों के समूह को व्यर्थ में कष्ट देते हैं, और शरीर के भीतर निवास करने वाले मुझ को भी कष्ट देते हैं । इन लोगों को तू आसुरी बुद्धि वाला समझ ।

7. आहारस्तवपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।।

ग़िज़ा जिसके शायक हैं सब उनकी सुन,
करें फ़र्क इसमें यही तीन गुण ।
यही गुण उसी तरह देंगे बदल,
इबादत रियाज़त सखावत के फल ।।

शब्दार्थ – आहारः–भोजन; तु–तो, परन्तु; अपि–भी; सर्वस्य–सबका; त्रिविधः–तीन प्रकार का; भवति–होता है; प्रियः–प्रिय; यज्ञः–यज्ञ; तपः–तप; तथा–और; दानम्–दान; तेषाम्–उनकी; भेदम्–भेद को, प्रकार को; इमम्–इसको; शृणु–सुन ।

गिज़ा–आहार; शायक–इच्छुक; इबादत–यज्ञ के अभिप्राय में; रियाजत–तप; सखावत–दान ।

भावार्थ – आहार भी सब को तीन ही प्रकार का प्रिय होता है । यही हाल यज्ञ, तप और दान का है । इनके भेद को सुन ।

8. आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।

ग़िज़ा जिससे सेहत हो और ज़िन्दगी,
बढ़े ज़ोर-ओ ताकत ख़ुशी खुरर्मी ।
मुकव्वी हो, पुर-रोगन और खुशगवार,
सतोगुण के शायक को है इससे प्यार ।।

शब्दार्थ –आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः–आयु, बुद्धि बल, नीरोगता, सुख, उल्लास को बढ़ाने वाले; रम्याः–रसीले; स्निग्धाः–स्निग्ध, चिकनाई वाले; स्थिराः–स्थिर; हृद्याः–हृदय को रुचिकर; आहाराः–आहार; सात्त्विकप्रियाः–सात्त्विक वृत्ति वाले मनुष्यों को प्रिय है ।

खुर्रमी–प्रसन्नता; मुकब्बी–बलवर्धक; पुर-रोगन–चिकनी; खुशग़वार–दिलपसन्द ।

भावार्थ – जो भोजन आयु, सात्विक-वृत्ति, बल, आरोग्य, सुख और उल्लास को बढ़ाते हैं, जो रसीले, स्निग्ध, शरीर को स्थिर बनाने वाले, रुचिकर होते हैं, वे सात्त्विक-वृत्ति वालों को प्रिय होते हैं ।

9. कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।।

सलोनी हो, खट्टी कि कड़वी ग़िज़ा,
जली, चटपटी, गर्म या बे-मज़ा ।
ग़िज़ा ऐसी खायें रजोगुण के लोग,
उन्हें रंज हो दुःख हो या तन का रोग ।।

शब्दार्थ –कट्वम्लवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः–कटु (चटपटे); खट्टे, नमकीन, बहुत गर्म, तीखे, रूखे और जलन उत्पन्न करने वाले; आहाराः–भोजन; राजसस्य–राजसिक वृत्तिवाले का; इष्टाः–प्रिय होते हैं; दुःखशोकामयप्रदाः–दुःख, शोक और रोग को देने वाले ।

भावार्थ –जो भोजन चटपटे, खट्टे, नमकीन, बहुत गर्म, तीखे, रूखे और जलन उत्पन्न करने वाले होते हैं, जो दुःख, शोक और रोग को उत्पन्न करते हैं, वे राजसिक-वृत्ति वालों को प्रिय होते हैं ।

10. यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।

जो बासी हो बूदार गन्दी ग़िज़ा,
हो बद-ज़ायका या हो जूठी ग़िज़ा ।
यह खाना तमोगुण के बन्दों का है,
कि खाना जो गन्दा है गन्दों का है ।।

शब्दार्थ – यातयामम्–एक प्रहर पहले बना हुआ; गतरसम्–नीरस; पूति–दुर्गंधयुक्त; पर्युषितम्–बासा; च–और; यत्–जो; उच्छिष्टम्–जूठा; अपि–भी; अमेध्यम्–गन्दा, अपवित्र; भोजनम्–भोजन; तामसप्रियम्–तामसिकों को प्रिय होता है ।

भावार्थ – जो भोजन देर का पड़ा हुआ हो, नीरस हो, सड़ गया हो, बासी हो, जूठा हो, गंदा हो, ऐसे भोजन तामस-वृत्ति वालों को प्रिय होते हैं ।

11. अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदिष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।।

वही है सतोगुण का यज्ञ बिलज़रूर,
न हो फल की ख़्वाइश का जिसमें फ़तूर ।
अमल शास्त्र की रियायत से हो,
इबादत इबादत की नीयत से हो ।।

शब्दार्थ – अफलाकांक्षिभिः–फल की इच्छा रहित; यज्ञः–जो यज्ञ; विधिदृष्टः–शास्त्रविहित; यः–जो; इज्यते–सम्पन्न किया जाता है; यष्टव्यम्–यज्ञ करना ही चाहिये; एव–ही; इति–इस प्रकार से; मनः–मन को; समाधाय–समाधान करके; सः–वह; सात्त्विकः–सात्त्विक होता है ।

बिलज़रूर–नि-ःसन्देह; फ़तूर–त्रुटि; अमल–यज्ञ; रियायत–अनुसार; इबादत–यज्ञ; नीयत–भावना ।

भावार्थ – जो यज्ञ फल की आकांक्षा छोड़कर, यज्ञ करना हमारा कर्त्तव्य है–यह समझकर, शास्त्र की विधि के अनुसार, मन का समाधान करके किया जाता है वह सात्विक-यज्ञ है ।

12. अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।

अगर यज्ञ किया फल की ख़्वाइश के साथ
ख़्याल-ए नमूद-ओ नुमाइश के साथ ।
तो अर्जुन नहीं यह सतोगुण का यज्ञ,
रजोगुण का है यह रजोगुण का यज्ञ ।।

शब्दार्थ –अभिसन्धाय–लक्ष्य करके; फलम्–फल को; तु–परन्तु; दम्भार्थम्–दम्भ के लिये; दिखावे के लिए; अपि–भी; च–भी; एव–ही; यत्–जो; इज्यते–सम्पन्न किया जाता है; भरतश्रेष्ठ–हे भरतकुल में श्रेष्ठ अर्जुन; तम्–उस; यज्ञम्–यज्ञ को; विद्धि–जान; राजसम्–राजस ।
नमूद-ओ नुमाइश–दम्भार्थ ।

भावार्थ –हे अर्जुन! जो यज्ञ किसी फल को लक्ष्य में रखकर, अपना वैभव-ऐश्वर्य प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है, समझ ले कि वह राजसिक-यज्ञ है ।

13. विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।

जो करते हैं यज्ञ शास्त्र के खिलाफ़,
न अन्न-दान जिसमें न मन्त्र हो साथ ।
न हो दक्षिणा और न ज़ौक-ए यकीं,
तमोगुण के यज्ञ के सिवा कुछ नहीं ।।

शब्दार्थ –विधिहीनम्–विधि-हीन; असृष्टान्नम्–जिसमें अन्नदान नहीं किया जाता; मन्त्रहीनम्–मंत्र पाठ से रहित; अदक्षिणम्–दक्षिणा से रहित; श्रद्धाविरहितम्–श्रद्धा से शून्य; यज्ञम्–यज्ञ को; तामसम्–तामस; परिचक्षते–कहते हैं ।
खिलाफ़–विधिहीन; ज़ौक-ए यकीं–तीव्र श्रद्धा ।

भावार्थ –जो यज्ञ विधिहीन है, जिसमें अन्नदान नहीं किया जाता, जिसमें मंत्र-पाठ नहीं होता, दक्षिणा नहीं दी जाती; वह तामस-यज्ञ कहलाता है ।

14. देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।

जो पूजा करें देवताओं की तू,
ब्राह्मण हों आलम हों या हों गुरु ।
अहिंसा, मुजर्रद, सफ़ा, रास्ती ,
बदन की रियाज़त यही है यही । ।

शब्दार्थ – देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्–देव, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान् की पूजा; शौचम्–पवित्रता; आर्जवम्–सरलता; ब्रह्मचर्यम्–ब्रह्मचर्य; अहिंसा–अहिंसा; च–और; शारीरम्–शारीरिक; तपः–तप; उच्यते–कहलाता है ।

आलम–पण्डित; मुजर्रद–ब्रह्मचर्य; सफ़ा–शुद्धि; रास्ती–सरलता; रियाज़त–तप ।

भावार्थ – देवताओं, ब्राह्मणों, गुरुओं और विद्वानों की पूजा करना, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसापूर्वक जीवन बिताना–यह सब शरीर का तप कहलाता है ।

15. **अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।**
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते । ।

सुखन वो जो सच्चा हो और बे-खरोश,
मुफ़ीद-ए ख़लायक हो फ़रदोस-ए गोश ।
मुकद्दस कुतब की तलावत मदाम,
ज़बाँ की रियाज़त इसी का है नाम । ।

शब्दार्थ – अनुद्वेगकरम्–किसी को उद्विग्न न करने वाला; वाक्यम्–वचन; सत्यम्–सत्य; प्रियहितम्–प्रिय और हितकारी; च–भी; यत्–जो; स्वाध्यायाभ्यसनम्–स्वाध्याय किये का अभ्यास; एव–ही; वाङ्मयम्–वाणी सम्बन्धी; तपः–तप; उच्यते–कहलाता है ।

सुखन–वचन; बे-खरोश–न उद्वेगकारक; मुफ़ीद-ए खलायक–हितकर; फ़रदोस-ए गोश–प्रिय; मुकद्दस–परम आदरणीय; कुतब–ग्रंथ; तलावत–स्वाध्याय; मदाम–सदा; जबाँ–वाणी; रियाज़त–तप ।

भावार्थ – ऐसे वाक्य बोलना जिनसे दूसरे लोग उद्विग्न न हो जायें, जो सत्य होने के साथ-साथ प्रिय हों, हितकारी हों, वाङ्मय का स्वाध्याय करना और स्वाध्याय किये हुए का अभ्यास रखना–यह वाणी का तप कहलाता है ।

16. **मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।**
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।

सकूँ दिल में हो लब पे हो खमोशी,
हलीमी ख़्यालों में पाकीज़गी ।
रहे नफ़्स पर जब्त और दिल हो राम,
इसी शाय का मन की रियाज़त है नाम ।।

शब्दार्थ – मनःप्रसादः–मन की प्रसन्नता रखना; सौम्यत्वम्–सौम्यता; मौनम्–अधिक न बोलना; आत्मविनिग्रहः–आत्म-संयम; भाव-संशुद्धिः–चित्त की भावना शुद्ध रखना; इति–इस प्रकार का; एतत्–यह; तपः–तप; मानसम्–मानस, मन-सम्बन्धी; उच्यते–कहलाता है ।

सकूँ दिल–प्रशांत मन; खामशी–मौन; हलीमी–विनम्रता; पाकीज़गी–भाव शुद्धि; नफ़्स–मन; ज़ब्त–निग्रह; राम–शान्त; रियाज़त–तप ।

भावार्थ – मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, आत्म-संयम और चित्त की शुद्ध भावना–यह सब मन का तप कहलाता है ।

17. **श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।**
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।।

जो यकदिल यकीं से इबादत करें,
वो तन-मन ज़बाँ से रियाज़त करें ।
न ही फल की ख़्वाइश पे आमदिगी,
सतोगुणी रियाज़त यही है यही ।।

शब्दार्थ – श्रद्धया–श्रद्धा से; परया–श्रेष्ठ, अत्यधिक; तप्तम्–तप किया हुआ; तपः–तप; तत्–वह; त्रिविधम्–तीन प्रकार का है; नरैः–मनुष्यों से; अफलाकांक्षिभिः–फलों की इच्छा न करने वाले; युक्तैः–प्रवृत्त; सात्त्विकम्–सात्त्विक; परिचक्षते–कहते हैं ।

यकदिल–अनन्यतापूर्वक; यकीं–श्रद्धा; रियाज़त–उपासना; आमादगी–अभिलाषा; रियाज़त–तप ।

भावार्थ – इन तीनों प्रकार के तपों को यदि मनुष्य फल की आकांक्षा छोड़कर लगन और परम श्रद्धा के साथ करे तो सात्त्विक कहलाते हैं ।

18. सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।।

रियाज़त दिखावे की गर जी को भाये,
कि लोगों में इज़्ज़त हो पूजा कराये ।
रियाज़त वो चंचल है नापायेदार,
कर इसको रजोगुण रियाज़त शुमार ।।

शब्दार्थ – सत्कारमानपूजार्थम्–सत्कार, मान और पूजा को प्राप्त करने की इच्छा से; तपः–तप; दम्भेन–दम्भ से; च–और; एव–ही; यत्–जो; क्रियते–किया जाता है; तत्–वह; इह–इस संसार में; प्रोक्तम्–कहा जाता है; राजसम्–राजस; चलम्–चंचल; अध्रुवम्–क्षणिक ।

नापायदार–अस्थाई; शुमार–गिनना ।

भावार्थ – जो तप सत्कार, मान एवं पूजा कराने के लिए अथवा दम्भ के लिए, पाखण्ड, दिखावे, प्रदर्शन के लिए किये जाते हैं, वे राजस कहलाते हैं, वे क्षणिक होते हैं ।

19. मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।

वो तप जिसमें ज़िद्दी उठाता है कष्ट,
वो तप जिसका मक्सद हो औरों का नष्ट ।
जहालत का तप इसको गरदान तू,
तमोगुण रियाज़त इसे जान तू ।।

शब्दार्थ – मूढग्राहेण–मूढता वश आग्रह से; आत्मनः–अपनी; यत्–जो; पीडया–कष्ट सहकर; क्रियते–किया जाता है; तपः–तप; परस्य–दूसरे के; उत्सादनार्थम्–उखाड़ने के प्रयोजन से; वा–या; तत्–वह; तामसम्–तामसिक; समुदाहृतम्–कहा जाता है ।

मक्सद–उद्देश्य; जहालत–अज्ञानता; गरदान–समझना ।

भावार्थ – जो तप मूर्खतापूर्ण दुराग्रह के साथ अपने-आपको कष्ट देकर या दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए अंधविश्वास में फंस कर किये जाते हैं, वे तामसिक कहलाते हैं ।

20. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।

उसे जानकर फ़र्ज़ ख़ैरात दे,
जो हकदार हो जिससे ख़िदमत न लें ।
मुनासिब हो वक्त और हो मौजूं मकाम,
सतोगुण सखावत इसी का है नाम ।।

शब्दार्थ – दातव्यम्–देने योग्य है; इति–इस प्रकार से; यत्–जो; दानम्–दान; दीयते–दिया जाता है; अनुपकारिणे–अपने ऊपर उपकार न करने वाले को; देशे–देश में; काले–काल में; च–तथा; पात्रे–पात्र में; तत्–वह; दानम्–दान; सात्विकम्– सात्विक; स्मृतम्–माना गया है ।

फ़र्ज़–कर्तव्य; ख़ैरात–दान; हकदार–अधिकारी; ख़िदमत–सेवा; मुनासिब–उचित; मौजूँ–उचित; मकाम–देश; सखावत–दान ।

भावार्थ – जो दान, 'देना उचित है' – ऐसा समझकर अपने ऊपर प्रत्युपकार न करने वाले को, देश, काल तथा पात्र का विचार करके दिया जाता है, उस दान को सात्त्विक-दान माना गया है ।

21. यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।

हो एहसाँ से बदले की ख़्वाइश अगर,
सखावत में फल पर लगी हो नज़र ।
अगर बे-दिली से कोई दान दे,
रजोगुण सखावत उसे जान ले ।।

शब्दार्थ – यत्–जो; तु–परन्तु; प्रत्युपकारार्थम्–किसी उपकार के बदले में फलम्–फल को; उद्दिष्य–आशा करके; वा–अथवा; पुनः–फिर; दीयते–दिया जाता है; च–और; परिक्लिष्टम्–क्लेश के साथ;

तद्—वह; दानम्—दान; राजसम्—राजस; स्मृतम्—कहा जाता है ।
एहसाँ—दान के अर्थ में; सखावत—दान; बे-दिली—क्लेशपूर्वक ।

भावार्थ —परन्तु जो दान किसी उपकार के बदले में प्रत्युपकार की आशा से या भविष्य में किसी लाभ की आशा से दिया जाता है, या जिसे देते हुए दानदाता क्लेश अनुभव करता है, उस दान को राजसिक-दान माना गया है ।

22. अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।

अगर नामुनासिब है वक्त और मकाम,
उसे दान दें जिसको देना हराम ।
जो ले उसकी जिल्लत करें दिल दुःखायें,
तमोगुण सख़ावत उसी को बतायें ।।

शब्दार्थ —अदेशकाले—देश और काल को न देखकर; यत्—जो; दानम्—दान; अपात्रेभ्यः—दान के अनधिकारियों को; च—और; दीयते—दिया जाता है; असत्कृतम्—सम्मान न करके; अवज्ञातम्—निरादर करके; तत्—वह; तामसम्—तामसिक; उदाहृतम्—कहा जाता है ।
नामुनासिब—अनुचित; वक्त—काल; मकाम—देश; हराम—अपात्र; जिल्लत—अपमान ।

भावार्थ —जो दान देश, काल तथा पात्र का विचार किये बिना तिरस्कारपूर्वक कुपात्र को दिया जाता है, वह दान तामस-दान कहा गया है ।

23. ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।

जो है ॐ तत् सत् मुकद्दस कलाम ,
सह-गोना है यह ब्रह्म का पाक नाम ।
इन्हीं से ब्राह्मण हुए आशकार,
इन्हीं से हुए यज्ञ और वेद चार ।।

शब्दार्थ —ओं तत्सत्—ओम+तत्+सत्; इति—यह, इस प्रकार से; निर्देशः—निर्देश; ब्रह्मणः—ब्रह्म का; त्रिविधः—तीन प्रकार का; स्मृतः—कहा गया है; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण ग्रन्थ; तेन—उस ब्रह्म से;

वेदाः—वेद; च—भी; विहिताः—किये गये; पुरा—प्राचीन काल में ।
मुकद्दस—पवित्र; कलाम—महावाक्य; सहगोना—तीन अक्षरों वाला; आशकार—प्रकट ।

भावार्थ —ओं+तत्+सत्—यह ब्रह्म का तीन प्रकार का निर्देश माना जाता है । प्राचीन काल में ब्रह्म से ही ब्राह्मण ग्रंथ, वेद तथा यज्ञ निर्मित हुए ।

24. तस्माद् ॐ इत्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।

इबादत सख़ावत रियाज़त के काम,
मुआफ़िक जो हैं शास्त्र के तमाम ।
वो सब ब्रह्मदां मरदम-ए पारसा,
हमेशा करें ॐ से इब्तदा ।।

शब्दार्थ —तस्मात्—इसलिये; ओम्—ओम्; इति—इस प्रकार से; उदाहृत्य—उच्चारण करके; यज्ञदानतपःक्रियाः—यज्ञ, दान और तप की शास्त्रोक्त क्रियाएँ; प्रवर्तन्ते—आरम्भ होती हैं; विधानोक्ताः—शास्त्रविहित; सततम्—सदा; ब्रह्मवादिनाम्—योगियों की ।
इबादत—यज्ञ; सखावत—दान; रियाज़त—तप; मुआफ़िक—अनुकूल; मरदम-ए पारसा—विवेकी पुरुष; इब्तदा—शुरुआत ।

भावार्थ —इसलिए योगियों की शास्त्रों के विधान द्वारा बतलाई गई यज्ञ, दान, तप रूपी क्रियाएँ सदा 'ओम्' का उच्चारण करके आरम्भ की जाती हैं ।

25. तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ।।

जहाँ में है मतलूब जिसको निजात,
समर से नहीं कुछ उसे इल्तफ़ात ।
इबादत रियाज़त सख़ावत करे,
मगर हफ़-ए तत् पहले मुँह से कहे ।।

शब्दार्थ —तद्—वह 'तत्'; इति—इस प्रकार से; अनभिसन्धाय—बिना इच्छा किये; फलम्—फल को; यज्ञतपः क्रियाः—यज्ञ, तप और अनेक क्रियाएँ; दानक्रियाः—दान देने का कार्य; च—और;

विविधाः—विभिन्न; क्रियन्ते—की जाती हैं; मोक्षकांक्षिभिः—मोक्ष चाहने वालों के द्वारा ।

मतलूब—इष्ट; निजात—मोक्ष; समर—फल; इल्तफ़ात—ध्यान; इबातद—यज्ञ; रियाज़त—तप; सख़ावत—दान; हर्फ़—अक्षर ।

भावार्थ —व्यक्ति को चाहिये कि कर्मफल की इच्छा किये बिना अनेक प्रकार के यज्ञ, तप एवं दान को 'तत्' शब्द कहकर सम्पन्न करें । ऐसी दिव्य क्रियाओं का उद्देश्य भव-बंधन से मुक्त होना है ।

26. सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।।

हक़ीक़त यही है हक़ीक़त है सत्
सदाकत यही है सदाकत है सत् ।
कि दुनियाँ में जो भी भला काम है,
सुन अर्जुन कि उसका भी सत् नाम है ।।

शब्दार्थ —सद्भावे—वास्तविकता के भाव में; साधुभावे—भलाई में; च—और; सत्—सत; इति—इस प्रकार से; एतत्—यह; प्रयुज्यते—प्रयुक्त होता है; प्रशस्ते—प्रशंसनीय; कर्माणि—कर्म में; तथा—और; सच्छब्दः—'सत्' शब्द; पार्थ—हे अर्जुन ! युज्यते—प्रयुक्त होता है । हक़ीक़त—यर्थाथता; सदाकत—सत्यता ।

भावार्थ —'सत्' शब्द का प्रयोग 'वास्तविकता' तथा 'भलाई' के अर्थ में किया जाता है । 'प्रशंसनीय' —कार्य के लिए भी 'सत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

27. यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।।

यही सत् समझ उस अक़ीदत को जो,
इबादत रियाज़त सख़ावत में हो ।
करें उस ख़ुदा के लिये जो भी काम,
तो उस काम का भी यही सत् है नाम ।।

शब्दार्थ —यज्ञे—यज्ञ में; तपसि—तप में; दाने—दान में; च—और; स्थितिः—स्थिर रहना; सत्—सत्; इति—इस प्रकार से;

उच्यते–कहलाता है; एव–ही; तदर्थीयम्–इन प्रयोजनों के लिए; सत्–सत्; इति–इस प्रकार से; अभिधीयते–कहा जाता है ।

अक़ीदत–श्रद्धा; इबादत–यज्ञ; रियाज़त–तप; सखावत–दान ।

भावार्थ – यज्ञ, तप और दान में दृढ़ता से स्थिर रहना भी 'सत्' कहलाता है । 'सत्' अर्थात् इन प्रयोजनों को लेकर किया गया कर्म भी 'सत्' कहलाता है ।

28. अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।

हवन दान में हो अक़ीदत न शौक,
रियाज़त में ईमाँ अमल में न ज़ौक ।
इन अफ़आल का फिर असत् नाम है,
यहाँ है न उनका वहाँ काम है ।।

शब्दार्थ – अश्रद्धया–श्रद्धारहित; हुतम्–जो यज्ञ किया जाता है; दत्तम्–प्रदत्त; तपः–जो तप; तप्तम्–(तप) किया जाता है; कृतम्–किया गया है; च–और; यत्–जो; असत्–असत्; इति–इस प्रकार से; उच्यते–कहा जाता है; पार्थ–हे अर्जुन! न–नहीं; तत्–वह; प्रेत्य–मरने पर; नो–नहीं; इह–इस जीवन में ।

अक़ीदत–श्रद्धा; शोक–उत्सुकता; रियाज़त–तप; ईमाँ–धार्मिकता; अमल–कर्म; ज़ौक–लगनता; अफआल–बहु कर्म; यहाँ–लोक; वहाँ–परलोक ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! श्रद्धा के बिना यज्ञ, दान के रूप में जो भी किया जाता है वह नश्वर है । वह असत कहलाता है और इस जन्म में एवं अगले जन्म, दोनों में ही व्यर्थ जाता है ।